गुन्दा

वैज्ञानिक नाम :– कोर्डिया
स्थानीय नाम :– बडा गुन्दा, लसोडा, गुन्दा

यह मध्यम आकार का पर्णताती वृक्ष है, जो भारत वर्ष में हिमालय के निचले ढलान पर (5000 फीट) और सामान्य व अधिक वर्षा वाले वनों से लेकर उष्ण प्रदेशीय वनों में और कम वर्षा वाले राजस्थान के अर्ध शुष्क वन–क्षेत्र, उद्यान, एवं कृषि भूमि पर भी पनप सकता है। इसके लिए 35 डिग्री से 48.09 डिग्री सैल्सियस के अधिकतम तापमान से लेकर 0 डिग्री से 15.06 डिग्री सैल्सियस का न्यूनतम तापमान उपयुक्त है। व इसी प्रकार 3050 मि.मी. वर्षा वाले नमीयुक्त क्षेत्रों के अलावा राजस्थान के 255 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में भी पनप सकता है।

इसकी छाल हल्के भूरे रंग की होती है। इस पर लम्बी धारियां होती है। इसते पत्ते 7 से 15 से.मी. लम्बे और 5 से 10 से.मी. चौडे होते हैं और ऊपरी व बाहरी किनारों कर कटे हुए होते है। लसोडे के पेड से ग्रीष्म ऋतु में बहुत कम समय के लिये पत्ते झडते हैं। मार्च से मई मके महीनों में इस पर सफेद रंग के छोटे फूल आते है और और मई व जून के महिनों में 2 से 3 से.मी. व्यास के गोल गूदेदार फल आते है जो जुलाई से सितम्बर तक पक जाते है। इसके फल का गूदा लसेदार (म्यूसिलेजिनस) व चिपकने वाला होता है।

पौधशाला विधि :

इसके फल का गूदा हटाने पर सख्त छिल्के से सुरक्षित बीज धारण करने वाला भाग दिखाई पडता है। इसको सल्फ्यूरिक अम्ल अथवा गरम पानी में भिगो कर छिल्के को नरम बनाना आवश्यक है। इसके गीज में अकुंरण क्षमता एक वर्ष तक रहती है। इसके बीज को क्यारियों में अंकुरित कर थैलियों में लोना उपयुक्त है। पौधशाला में एवं प्रत्यारोपण के बाद इसकी बढोतरी मध्यम तीव्र गति से होती है। पौधशाला में एक वर्ष तक पोषित पौधे वृक्षारोपण के लिये उपयुक्त रहते है।

वृक्षारोपण विधि :

पोलीथीन की थैलियों में उगाये पौधो को बाँस की टोकरी अथवा लकडी के खोकों में वृक्षारोपण स्थल तक परिवहन कर, पहले से तैयार किये गये गड्ढो में, मिट्टी पर एल्ड्रेक्स छिडक कर, ठीक से वर्षा हो जाने के बाद पौधों को सावधानीपूर्वक थैली हटाकर सीधा रखते हुए मिट्टी भर कर पानी दे कर पौधारोपण करना आवश्यक है। पौधारोपण के साथ साथ पौधे के नीचे अर्द्ध चन्द्राकार थाँवला बनाकर वर्षा ऋतु में 2–3 बार पौधो के चारों तरफ निराई और मिट्टी में नमी बना रखने के लिये सितम्बर अक्टुम्बर में 3 बार गुडाई की जाना आवश्यक है।

बढौतरी एवं वृद्धि दर :

लसोडे के पौधे प्रथम वर्ष में धीमी गति से बढते है। लेकिन द्वितीय वर्ष में इनकी औसत ऊँचाई 135 से.मी. हो जाती है। नियमित रूप से सिचित करने एवं निराई गुडाई से वृद्धि दर में बढौतरी होती है। इसकी औसत वार्षिक वृद्धि (पेड की गोलाई में) 2 से.मी. प्रति वर्ष होती है।

उपयोग :

इसकी लकडी नरम व हल्की है लेकिन साथ ही मजबूत होती है। इसको ईंधन के लिये काम में लेते है। इसके कच्चे फल को सब्जी बनाने व अचार के रूप में काम में लिया जाता है। इसकी छाल के रेशे से रस्सी बनती है जिसे नाव के छिद्र बन्द करने के काम में लेते है। लसोडे के वृक्ष पर 10 वर्ष से 15 वर्ष बाद फल आने लगते है जिनसे कृषक को लगातार 30–40 वर्ष के लिये आय मिल जाती है।

सु–बबूल

वैज्ञानिक नाम :– ल्यूसीना ल्यूकोसिफेला
स्थानीय नाम :– सु–बबूल
अंग्रेजी नाम :– लेड ट्री, सुबबूल

विवरण :

इसका उदगमा स्थल मध्य अमेरिका है। इसमें तेजी से बढने एवं बहुपयोगी गुणों के कारण विश्व के सभी उष्ण प्रदेशीय देशों में अत्यधिक लोकप्रिय हो गया है। भारत की जलवायु में दो प्रजातियां हवाइयन कामन एवं हवाइयन जाइन्ट की के–8, के–23, के–67 आदि अच्छी तरह से उगती है। यह 15 से 17 डिग्री उतरांश में मिलता है। इस में सूखा सहन करने की 2 से 6 महिने की क्षमता है। यह हल्की एवं मध्यम प्रकार की भूमि एवं पत्थरीली भूमि जिसमें ठीक से जल निकासी होती है भली–भांती पनपता है। इसके लिए औसत वार्षिक तापमान 20 से 28 डिग्री सेन्टीग्रेड की आवश्यकता होती है। तथा 600 से 1000मि.मी. वार्षिक वर्षा इसके लिये पर्याप्त है। यह एक अधिक प्रकाश चाहने वाला, अधिक तेजी से बढ़ने वाला वृक्ष है, जो पाले के प्रति संवेदन शील है। सूखे को एक हद तक सहन कर सकता है। इसको काटने पर कोपिस द्वारा पुनरोत्पादन प्राप्त होता है। (कोपिस–कटे वृक्ष के ठूँठ से कल्ले स्फुटिक होना।)

इसकी विभिन्न प्रजातियों को राजस्थान के गैर मरूस्थलीय जिलों में वन विभाग द्वारा वितरित किया गया और प्रगतिशील काश्तकारों ने इसे अपनाया है। लेकिन समुचित जल निकासी के अभाव में जल संतृप्त क्षेत्रों में यह जीवित नहीं रह सकता।

बीज उपलब्धि :

इस प्रजाति में प्रथम वर्ष अथवा दूसरे वर्ष से ही फूल एवं फलियां आना आरम्भ हो जाता है। वर्ष में दो बार फलियां आती है एक आर जुलाई से नवम्बर के मध्य व दूसरी आर फरवरी से मई के मध्य। फरवरी से मई के मध्य आने वाली फलियों में अच्छा बीज आता है। प्रत्येक फली में करीब 15 से 30 बीज होते है। एक किलाग्राम में करीब 20,000 बीज होते है। बीज का छिलका बहुत कठोर होता है। ठीक से पके हुए बीज आठ से दस वर्ष तक अच्छे रह सकते है।

उत्पादन विधि :

इस प्रजाति का प्राकृतिक प्रजनन बहुतायात से होता है। तथा इसमें ठूंठ से फुटान (कोपिसिंग) द्वारा पुनः वृक्ष में विकसित होने की क्षमता होती है। इसमें अत्यधिक बीज लगते है। जो फलियों के तडकने पर फैल जाते है। और प्राकृतिक तौर पर अच्छी तरह उग आते है। इसके (वृक्ष अथवा पौधों से) कोपिस की वृद्धि बीज से तैयार पौधों से अधिक होती है।

पौधशाला में पुनरोत्पादन :

इसका सीधे ही बिजाई करने अथवा नर्सरी में थेलियों में बीजारोपण करके पौधे उगाना आसान है। सीधे ही बिजाई के लिए राइजोबियम कल्चर मिला बीज कन्टूर ट्रेन्चेज अथवा मिट्टी खोद कर तैयार की गई क्यारियों पर बिखरने से अच्छी तरह अकुंरित हो जाता है। बीज का थेलियों अथवा क्यारियों में बिजाई से पूर्व उपचार आवश्यक है, जिसके निम्न तरीके हैः– (राइजोक्यिम – जैविक खाद)

1– सख्त छिलके की सतह को तोड़कर।

2– सान्द्रगन्धक के तेजाब में 15 मिनट तक बीज का उपचार करना।

3– सबसे आसान तरीका उबलते पानी को नीचे उतार कर 5 मिनट बाद बीज को उसमें डाल देंवे और 15 मिनट गर्म पानी में रखने के बाद भीगे हुए जूट के थैले में 8 से 10 घंटे रखें। बाद में 24 घंटे छाया में सुखांए। उपचारित

बीज के साथ राइजोबियम कल्चर मिलाकर थैलियों में माह फरवरी मार्च में बोने से पौधे वृक्षरोपण वास्ते जुलाई अगस्त तक तैयार हो जाते है। 4 से 6 दिन के बीज अंकुरण हो जाता है।

पौधारोपण :

इमारती लकड़ी के साथ–साथ अंतर फसल लेने के लिये सु–बबूल के 4x3 मीटर की दूरी पर पौधे लगावें। ईंधन के लिऐ 3x2 मीटर की दमरी उपयुक्त है। चारे के लिये 1 मीटर की दूरी पर हल चला कर 10 से.मी. के अन्तर पर बीज पौधें उगावें।

पौधो की देख–भाल :

प्रथम वर्ष में दो–तीन बार खरपतवार साफ करके गुड़ाई करवायाा जाना आवश्यक है। पाले से बचने के लिऐ सर्दी में पानी भी पिलवाया जाना आवश्यक है। पशुओं से सुरक्षा क लिए बाड़बन्दी की जानी चाहीये।

वृद्धि की दर :

इसकी वृद्धि की दर, भूमि की किस्म, पानी की उपलब्ध्मा तथा पौधों की आपस में दूरी पर काफी निर्भर करती है। 5–6 वर्ष में यह 10 से 12 मीटर की ऊँचाई तक पहुंच जाता है और इसका व्यास 10 से.मी. के आस पास होता है।

हानिकारक रोग :

यह पाले के प्रति अधिक संवेदनशील है तथा पशुओं बंदर, खरगोश, हिरण, नीलगाय आदि से चराई का काफी अंदेशा रहता है। वैसे अनय बिमारियों व कीडों आदि से यह काफी मुकाबला कर लेता है।

(Aspidiotus Lataniae) इसके पत्ते व तने का रस चूसकर नुकसान करता है। तथा (Fusarium) नाम की फूंफूदी इसमें गमोसिस पेदा करता है। सु–बबूल के भारत में सर्व प्रथम प्रवेश वर्ष 1972 के बाद से ही साईलिड (Hetropsylla cubana) कीडें का प्रकोप देखा गया तथा भारी मात्रा में दक्षिण भारत में कृषकों को सु–बबूल उगाने में परेशानियों का सामना करना पड़ा। इसके लिये कुछ प्रजातियों (L.Diversifolia) (के.785 तथा के.156) तथा L. Pallida (के. 376) तैयार की गई, जिनमें इन कीड़ों से लडने की पर्याप्त क्षमता है।

उपयोगिता :

इसकी पत्तियाँ हरे चारे के रूप में काम आती है, जिसे मवेशी बडे चाव से खाते है। सु–गगूल में 22 से 23 प्रतिशत तक प्राटीन होता है। इसमें माइमोसीन नामक हानिकारक पदार्थ भी होता है। जिससे पशुओं के बाल झड जाते है अथवा जहर चढ़ जाता है, अतः इसकी पत्तियों को अन्य चारे के साथ मिलाकर खिलाया जाता है। भारतीय पशुओं पर इसकी पत्तियों से कोई नुकसानदायक प्रीााव नहीं होता है। पशुओं की आयु को देखते हुए सु–बबूल का अंश 20 से 30 प्रतिशत रखें। 6 माह से कम आयु के पशुओं को यह चारा न देंवे। दूध दोहने के दो घन्टे के बाद इनकी पत्तियों को दुधारू मवेशियों को खिलाई जानी चाहिये। हरे चारे के लिये पौधो को नजदीक बोया जाता है तथा ऊँचाई लगभग 2 मीटर तक रखी जाती है। साल में 4 से 6 बार हरे चारे के लिये कटाई की जा सकती है।

सु–बबूल की लकडी कठोर व मजबूत होती है। इसलिये आसानी से काष्ट निर्माण कार्य में उपयोग की जा सकती है। इसे सस्ती इमारती लकडी के रूप में तथा लकडी के खम्बों के रूप में कार्य में ली जाती है। इमारती लकडी के प्रयोजन से उगाए वृक्षों को 5 वर्ष में और ईंधन के लिये उगाए वृक्षों को 2–3 वर्ष के अन्तराल पर काटा जा सकता है।

इसकी लकडी ईंधन तथा कोयला बनाने के काय्र में लाई जाती है। इसकी लकडी से कागज की लुग्दी भी बनाई जाती है। इस वृक्ष की जड़ें तथा छाल का औषध के रूप में उपयोग किया जाता है। इसकी फलियो से

रंग तैयार करके ऊनी व सूती कपड़ों को रंगा जा सकता है। पत्तियाँ तथा कोमल टहनियाँ कम्पोस्ट खाद के रूप में काम आती है।

चारे के रूप में काम में लिये जोने पर इसे 1 मीटर की दूरी पर पंक्तियों में 10 से.मी. के अन्तर पर बोया जाता है। 80 से.मी. से 1 मीटर ऊँचाई से 1–1/2 से 2 महीने के अन्तराल में काट कर उपयोग में लिया जाता है। चारे के लिये सु–बबूल की शाखाओं को 1.25 मीटर नम्बी और 7 मि.मी. से अधिक मोटाई में नहीं बढ़ने देंवें। सु–बबूल रोपने के बाद 15 वर्ष तक चारा देता है। सिंचित खेती में इसकी 8 से 9 फसल ली जाती है और प्रति वर्ष 80 से 100 टन हरा चारा प्रति हैक्टेयर मिलता है। असिंचित खेती में प्रति वर्ष 4 से 6 फसल ली जाती है। प्रति वर्ष 15 से 40 टन चारा प्राप्त होता है।

इज़ायली बबूल

वनस्पति नाम : एकेशिया टोर्टलिस (Acacia tortilis)
स्थानीय नाम : इज्रायली बबूल

विवरण एवं उपलब्धि :

इसका उद्‌गम स्थल इज्राइल हैं। वर्ष 1958 में यह सर्वप्रथम पश्चिमी राजस्थान में रोपित किया गया। यह राजस्थान के शुष्क एवम् अर्ध शुष्क रेतीले क्षेत्र में अच्छी तरह पनपता हैं।

यह 5 से 6 मीटर की मध्यम ऊँचाई वाला वृक्ष हैं। इसका शिखर (क्राउन) छतरी के आकार का होता हैं। इसे 100 से 800 मि.मी. वर्षा की आवश्यकता होती है तथा वार्षिक औसत तापमान 20 से 28 डिग्री सैल्सियस उपयुक्त है। यह तीव्र गति से बढ़ने वाला वृक्ष है। इसमें ठूँठ से पुनः फुटान द्वारा पुनस्थापना की क्षमता होती है। प्रारम्भिक अवस्था में यह पाले से प्रभावित होता है।

यह राजस्थान के मरूस्थलीय जिलों में काफी मात्रा में लगाया गया है। इसका वृक्षारोपण गैर मरूस्थलीय जिलों में अरावली के निचले ढ़लानों पर वायु द्वारा उड़ाकर लाई गई रेतीली मिट्टी के टीबों पर किया जाता है।

फूल, फली व बीज :

तीन वर्ष के पश्चात्, इसको पेड़ो में फूल आने लगते है। फूल मई में आने प्रारम्भ हो जाते है और इसकी फली नवम्बर से फरवरी तक पक कर तैयार हो जाती है। इनके बीज का वनज 12000 प्रति किलोग्राम के लगभग होता है। इसका बीज कठोर होता है।

पुनरोत्पत्ति एवम् पौधशाला विधि :

एक बार रोपित कर लगाने के पश्चात् पनपने पर इसके बीज बहते पानी, हवा एवम् पशुओं के माध्यम से फैलाए जाने पर अंकुरित होते हैं और सुरक्षित स्थान पर उगने लगते है। इसका बीज कठोर होता है अतः गंधक के अम्ल से उपचार करना आवश्यक है। पौधशाला में अंकुरण में 40 से 60 दिन का समय लगता है और अंकुरण 60 प्रतिशत होता है। फरवरी माह में बोये गये बीज से जुलाई में पौधे तैयार हो जाते है।

पौधारोपण विधि :

जून के महिने में मदा कार्य कर लाइनों या डोले पर बीज बोने पर वर्षा ऋतु में अच्छी अंकुरित होता है। यह सरल एवम् सस्ता तरीका है परन्तु अंकुरण की दर काफी कम होती है। वृक्षारोपण के लिये दिसम्बर जनवरी से मई जून के महिनों में 45 से.मी. के घनाकार खड्डे खोद लिये जाते है, और दीमक से बचाव के लिये, मिट्टी में एल्ड्रेक्स मिला कर पौधारोपण किया जाता है।

देखभाल :

प्रथम वर्ष में बारिश के अभाव में एक बार पानी पिलाना आवश्यक है तथा अच्छी वृद्धि के लिए दो या तीन बार निराई गुड़ाई की जाना लाभदायक है।

वृद्धि दर :

यह एक अति शीघ्र बढ़ने वाला पौधा है जो विशेषकर रेतीले टीबों व रेतीले भूमि में अच्छा पनपता है। दस वर्ष में इसकी औसत ऊँचाई 6.40 मीटर तथा व्यास लगभग 14 से.मी. हो जाता है।

हानिकारक तत्व एवं रोग :

प्रारम्भिक अवस्था में इसे बकरी व ऊँट काफी नुकसान पहुँचाते है। चूहे इसकी जड़ों को बुरी तरह कुतरकर पौधे को बिल्कुल नष्ट कर देते है। पाले से इस प्रजाति को अत्यधिक क्षति होती है। प्रारम्भिक अवस्था में इसमें दीमक भी लगती है। Burchids नामक कीड़ा इसके बीज उत्पादन को प्रभावित करता है।

केटरपिलर, बीटल्स तथा Blight Diseases भी पौधे को क्षति पहुँचाती है।

उपयोग :

इसकी पत्तियां तथा फली भेड़, बकरी व ऊँट के लिए अच्छे पोषक चारे के रूप में काम आती है। इसकी लकड़ी अच्छे ईंधन तथा कोयले के रूप में काम आती है। लकड़ी से फैसिंग के खम्भे तथा कृषि के उपकरण बनाये जाते है। कांटेदार शाखाएं फैसिंग के काम आती है।

इसकी जड़ों में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवों से वायुमंडल की नाइट्रोजन के योगीकरण द्वारा भूमि की उत्पादन क्षमता बढ़ाने में मदद मिलती है।

टिब्बा स्थिरीकरण तथा शेल्टर बेल्ट प्लान्टेशन के रूप में सड़क, नहर तथा रेल्वे लाइनों के पास रेतील क्षेत्र में इसका अधिकांश उपयोग होता है। इससे गोंद भी प्राप्त होता है।

सिरस

वनस्पति नाम : एलबिजिया लेबेक
स्थानीय नाम : काला सिरस
अंग्रेजी नाम : ईस्ट इण्डियन वालनट

सामान्य विवरण :

सिरस मध्यम एवं चिशाल आकार का पर्ण पाती वृक्ष है। इसकी छाल बाहर से गहरी स्लेटी होती है, लेकिन अन्तः छाल लाल होती है। सड़क अथवा रेल मार्ग पर व अन्य खुली जगह में इसका तना छोटा रहता है और कम ऊँचाई से ही शाखांए फैलने लगती है लेकिन जंगल में अन्य वृक्षों के साथ उगने पर इसका तना सीधा व लम्बाई कत्रमें बढ़ता है। यह वृक्ष अर्ध–शुष्क पर्णपाती वनो में एवं उष्ण कटिबन्ध के नमी युक्त सदाबहार वनों में 500 से 2500 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। इसमें 2 माह से 6 माह तक का सूखा सहन करने की क्षमता होती है। इसके लिए अधिकतम व न्यूनतम तापमान 36 डिग्री, –10 डिग्री सेल्सियस एवं वार्षिक औसत तापमान 20 डिग्री से 28 डिग्री सेल्सियस उपयुक्त है।

यह रेतीली, दूमट एवं चिकनी मिट्टी में और ऊसर भूमि में भी उग सकता है। यह वृक्ष पर्वतीय क्षेत्रों में 1200 मीटर तक की ऊँचाई पर प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। राजस्थान में थार मरूस्थल के अर्धशुष्क भागों में भी इसके सफलतापूर्वक उगाया गया है। इस वृक्ष के छोटे पौधे हल्की छाया सहन कर सकते है। लेकिन इससे इनकी वृद्धि धीमी पड़ जाती हे। बड़े वृक्षों को बढ़ने के लिए प्रकाश व खुली जगह चाहिये। इसकी जड़े धरती की ऊपरी सतह में फैलती है। जड़ों में फटान से भी (रूट सकर्स) पौधे विकसीत होते है। इसकी जड़ों पर वायु मण्डल से नाईट्रोजन ग्रहण कर योगिकरण द्वार अवशोष्य यौगिक में बदलने वाली गाठें (नोडयूल्स) होती है। इस पर बान्दा अथवा लोरेन्थस के पौधे एपिफाइट के रूप में उगकर इसे क्षति पहंचाते है।

सिरस के वृक्ष पाले के प्रति संवेदनशील है। हालांकि पाले से विशेष हानि नहीं होती। इसके ठूठों से कौपिस द्वारा पुनरोत्पत्ति संभव है।

फूल–फल एवं बीज :

सिरस के पत्ते अक्टूम्बर–नवम्बर से फरवरी माह में झड़ जाते है। नये पत्ते मार्च–अप्रेल में आते है। सिरस के फूल अप्रेल से मई माह क बीच आते है। असकी फली दिसम्बर से म्रवरी के मध्य पक जाती है और हल्के पीले रंग की होती है। पकी हुई फली 20 से 30 से.मी. लम्गी व 3 से 5 से.मी. चोड़ी होती है। फली में 6 से 12 बीज होते है। इसका बीज 8मि.मी. लम्बा व 6 मि.मी. चौड़ा होता है और 1 किलो ग्राम में 8000 से 13000 बीज होते है। इसके बीजों को उपचार के लिए उबलते हुए पानी के बर्तन को चूल्हे से उतार कर बीज को 24 घण्टे के लिए गरम पानी में रखें।

पौधशाला विधि :

सिरस के बीज नवम्बर माह मं क्यारी बनाकर (जर्मिनेशन बेड्स) बो दिये जाते है। इसके बाद अंकुरित पौधो को फरवरी माह में पौलीथीन की थैलियों में ले लिया जाता है। सिरस के पौधे शीध्र बढ़ते है। अतः फरवरी के आरम्भ में बीज सीधें ही थैलीयों मं बो देने से 4–5 माह में पौधे वृक्षारोपण स्थल पर प्रत्यारोपण के योग्य हो जाते है।

कोपिस – वृक्ष के ठुंठ से फुटान द्वार विकसित पौधे

पौधारोपण :

सिरस के पौधे 4मी. x 4मी. अथवा 5मी. x 5मी. की दूरी पर लगायें जाना उपयुक्त है। इसके पौधे कन्टूर ट्रेन्चेज अथवा खाई फेन्सिंग के डोले पर सीधे ही बीजारोपण के द्वार भी उगाये जा सकते है। इसकी फली हल्की व चपटी होने के कारण, हवा दूर–दूर तक उड़ा कर ले जाती है। सम्भवतः इसी कारण यह वृक्ष विषम जलवायु, पथरीली रेतीली एवं ऊसर भूमि पर लगभग समस्त भारत वर्ष में प्राकृतिक रूप से उग कर पनपते हुए देखें गये है।

वृद्धि दर :

सिरस के पौधे तेजी से बढ़ते है। नियमित रूप से सिंचाई एवं गुड़ाई करने पर सिरस के पौधे 4 महिने मे 1.20 मीटर ऊँचाई के हो जाते है। 8 वर्ष के पौधे का तना (स्टेम) 21 से.मी. व्यास एवं 805 मीटर की ऊँचाई तक बढ़ जाते है। इमारती लकड़ी प्राप्त करने क उद्देश्य से सिरस के पेड़ को 15 वर्ष बाद काट सकते है।

विभिन्न प्रकार के हानिकारक तत्व एवं कीडों का प्रकोप :

सिरस के पेड़ों पर लोरेन्थस नामक एपिफाइट के उगने से हानि होती है। जड़े कम गहरी होने के कारण तेज हवा से पेड़ उखड़ जाते है। इसको मवेशी चर जाते है और ऊँटों को चराने के लिए इसकी शाखंए छांग दी जाती है। सिरस के पौधे पर कीड़ों का प्रकोप होने पर पत्ते झड़ जाते है। इसके पौधों को दीमक से भी भारी नुकसान होता है।

उपयोग :

सिरस के वृक्ष पहाड़ी एवंपथरीली भूमि अर्ध–मरूस्थलीय क्षेत्र व ऊसर भूमि, कन्द्रा क्षेत्रों में भूक्षरण की रोकथाम के लिए उपयोगी है। यह मार्ग वुक्षारोपण एवं कुषि वानिकी के लिए भी उपयोगी वृक्ष है। सिरस की लकडी फर्नीचर बनाने तराशने, (कार्विंग), छत डालने, चौखट बैलगाड़ी आदि बनाने के काम में ली जाती है।

सिरस के पत्ते पशुओं को चराने के निए उपयुक्त है। इसके पत्तों में 20 से 21 प्रतिशत प्रोटीन की मात्रा होती है।

आंवला

वनस्पति नाम : एम्बलिका आफिसिनेलिस
स्थानीय नाम : आंवला
अंग्रेजी नाम : एम्बलिक मिरोबेलन

सामान्य विवरण :

आंवले का वृक्ष मध्यम आकार का पर्णपाती वृक्ष है। जिसके पत्ते हल्के हरे रंग के होते है। इसकी छाल चिकनी व हल्के सलेअी रंग की होती है और गोलाकार छाल के उतरने से नीचे को पीली छाल पीले धब्बों के रूप में दिखाई पड़ती है। यह वुक्ष भारत के मैदानी भागों और मिश्रित पर्णपाती वनों में पाया जाता है। हिमालय के निचले ढ़लानों पर 4500फुट की ऊँचाई पर भी आंवले के वृक्ष देखे जा सकते है। यह राजस्थान के दक्षिण एवं पश्चिम वन क्षेत्रों में पाया जाता है, लेकिन पश्चिमी राजस्थान की शुष्क जलवायु एवं रेतीले राजस्थानी भागों में प्राकृतिक रूप से नहीं पाया जाता। यह वृक्ष दूमट मिट्टी एवं रेतीली मिट्टी में भली भांति पनपता है। इसको हल्की ऊसर भूमि में भी लगाया जा सकता है। यह 6.5 से 9.5 पी.एच. की ऊसर भूमि में भी पनप सकता है।

फूल, फल एवं बीज :

आंवले के पत्ते नवम्बर–दिसम्बर माह में प्राकृतिक रूप से गिरने लगते है और वृक्ष फरवरी–मार्च के महीने में पर्ण रहित हो जाता है। माह मार्च–अप्रेल में नये पत्ते आने आरम्भ हो जाते है। आंवले के वृक्ष में मार्च से मई के महीने में हल्के पीले रंग के छोटे छोटे फूल आते है जिन पर मधुमक्ख्यिों के झुण्ड देखे जा सकते है। इसका फल नवम्बर से फरवरी माह में पकता है जो कि आकार में 1 से 6 से.मी. व्यास के आकार का होता है।

आंवले का फल 6 गूद्देदार भागों में विभाजित होता है इसके नीचे अत्यधिक कठोर छिलके के अन्दर 4–6 बीज सुरक्षित रहते है। इनका बीज प्राप्त करने के लिए फल से गूदा हटाकर कठोर छिल्के वाले भाग को धूप में सूखाने से उसमें दरार पड़ जाती है और इसमें से 4 से 6 तक बीज प्राप्त किये जा सकते है। 1 कि. ग्रा. में आंवले के 68000 से 89000 बीज तक होते है।

पौधशाला विधि :

आंवले के बीज की अंकुरण शक्ति बहुत जल्दी क्षीण हो जाती है। इसका अंकुरण 40प्रतिशत होता है। अंकुरण में 30 दिन का समय लगता है और एक वर्ष पुराने बीजों का अंकुरण नहीं होता। इसके बीजों को फरवरी माह में एकत्रित करने के तुरन्त बाद पोलिथिन थैलियों में बो देने से भली भांति अंकुरण हो जाता है और 1–1/2 वर्ष तक पौधशाला में रखे पौध वृक्षारोपण के लिए अधिक उपयुक्त रहते है। इसके पौधो की ऊँचाई एक वर्ष में 75 से.मी. से 1 से.मी. तक हो जाती है।

बीज का उपचार :

एक बर्तन में पानी उबाला जावे। इस बर्तन को चूल्हे से उतार कर पांच मिनट तक ठंडा होने दीजिए। अब इस पानी में आंवले के बीज डालकर 15 मिनट रखने के बाद निकाल कर बोने से अच्छे परिणाम मिलते है।

पौधारोपण विधि :

इसके बीज की अंकुरण शक्ति बढ़ाने के लिए बीज को जिब्रेलिक ऐसिड में 500पी.पी.एम. के घोल में 24 घण्टे तक डुबो कर रखने के बाद, छाया में सुखाकर बोया जावे तो अंकुरण प्रतिशत में व्रद्धि की जा सकती है। पौधारोपण हेतु पहिले से 45 से.मी. धनाकार खड्डे तैयार कर लेने चाहिए और इनमें खाद व एल्ड्रेक्स को मिलाकर वर्षा आरम्भ होने के पश्चात् पौधे के ऊपरी भाग को सीधा रखते हुए थैली को सावधानीपूर्वक हटाने के पश्चात् पौधे मी मिट्टी के चारों और खुदी हुई मिट्टी को भर देना चाहिए। पौधारोपण के साथ पौधे को पानी दिया जावे। पौधो

की एक दूसरे से दूरी 4 x 4 मी. की होनी चाहिए। अच्छे वृक्ष की कलम लगाकर अथवा बड्स की ग्राफ्टिंग्स कर फलों की साईज व गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। आंवले का पौधा लगभग 10वर्ष में फल देने योग्य हो जाता है और फल का उत्पादन लगभग 40कि.ग्रा. प्रति वर्ष होता है। इससे काश्तकारों को प्रतिवर्ष लगभग रू. 80/– आय प्राप्त हो सकती है।

उपयोग :

आंवले का फल आयुर्वेदिक औषधि में बहुत ही उपयोगी है। इसका च्यवनप्रकाश, त्रिफला नामक औषधियां एवं अन्स दवाईयों के बनाने में प्रयोग किया जाता है। इसका फल वन्य प्राणियों के उपयोग में आता है। हर्ड–बहेड़ा – आंवला के फल को मिरेबोलन्स के नाम से जाना जाता है और इस वृक्ष की छाल, पत्तों व फल से टेनिन प्राप्त होती है। इसके दो फलों में संतरे की अपेक्षा 12 गुना विटामिन 'सी' उपलब्ध होता है। इसके फलों का अचार, मुरब्बा व जैम बनाने में उपयोग किया जाता है। इसके वृक्ष काश्तकार के खेतों पर और घर आंगन में उगाना उपयोगी है।

महुआ

वनस्पति नाम : मधुका लेटिफालिया अथवा मधुका इंडिका
प्रचलित स्थानीय नाम : महुआ अथवा महूड़ा

वर्णन एवं उपलब्धि :

महुआ का पुराना वृक्ष काफी बड़े आकार का होता है और पर्णपाती होने पर भी अधिकांश समय घनी छाया देता है। साधारणतः उष्ण कटिबन्ध के मिश्रित वनों में पाया जाता है। यह पथरीली दूमट मिट्टी पर भी अच्छा पनपता है। यह मोटे तने, फैली शाखाओं तथा गोला छत्र वाला विशाल वृक्ष होता है। इसकी छाल गहरे भूरे रंग की व साधारण धारियों वाली होती है।

जलवायु :

यह वृक्ष भारत वर्ष की अधिकांश पठारी भूमि एवं पर्वतों की घाटियों में 1200मिअर तक की ऊँचाई पर पाया जाता है। राजस्थान में सम्पूर्ण दक्षिण–पश्चिमी क्षेत्र तथा दक्षिणपूर्वी क्षेत्र के पठारी भाग में बहुतायात से मिलता है। महुए के वृक्ष पर साधारण पाले तथा सूखे का असर नहीं होता। इसकी सामाप्य बढ़ौतरी के लिये प्रकाश आवश्यक है। अन्य वृक्ष की छाया असहनीय है।

फूल, फल व बीज :

फरवरी से अप्रेल तक पतझड़ होने के बाद अप्रेल–मई में इसमें नई पत्तियाँ आ जाती है व मार्च–अप्रेल में फूल आकर जून जुलाई तक फल पक जाते है। इसके फूल हल्के पीले–सफेद मीठे गूदेदार व 1–1/2 से 2 से.मी. लम्बे होते है जो खिलने के बाद गरि जाते है और आदिवासियों द्वारा सुखाकर खाने के लिये बीन लिये जाते है इसका फल हरा, चमकीला, गोल तथा 5 से.मी. लम्बा व 3 से 4 से.मी. व्यास का होता है जिसमें चार बीज होते है। प्रति किलोग्राम ओसतन 940 बीज होते है जो तेल युक्त होते है, इस कारण इनका भण्डारण नहीं किया सकता। इसका बीज पेड़ पर लगे होने पर भी अंकुरित हो जाता है (विवि पेरस) पेड़ से गिरते ही बीज को एकत्रित कर बोना उपयुक्त रहता है।

बीज बड़े एकत्रित कर मंगवाने के तुरन्त बाद पहले से तैयार खाद व मिट्टी के मिश्रण से भरकर रखी पोलीथीन की थैलीयों में सीधे ही बो दिया जाता है। नर्सरी में बीज की बुवाई का कार्य माह जून के अन्त से जुलाई के द्वितीय सप्ताह तक किया जाता है। क्योंकि यह प्रकाश में पनपने वाली प्रजाति है अतः नर्सरी में ऐसे स्थान पर जहाँ पर्याप्त प्रकाश पहुंचता हो, क्यारियां बनाकर पौलीथीन की थैलीयां जमाकर बुवाई की जाती है और पौधो को 2 वर्ष तक पौधशाला में रखने के बाद वृक्षारोपण करना उचित है।

अत्यधिक धीमी गति से चढ़ने के कारण इसे जल्दी परिपक्व होने वाले एवं चराई हेतु जल्दी खोल दिये जाने वाले वृक्षारोपण क्षेत्रों में नहीं लगाया जाता। जिस क्षेत्र में इसका वृक्षारोपण किया जाना हो वहां 50 से.मी. का घनाकार गड्डा वृक्षारोपण से पूर्व ही तैयार कर लिया जाता है। प्रथम मानसून की वर्षा के बाद मिट्टी में पर्याप्त नमी होने पर पौधारोपण कर दिया जाता है।

आवश्यकतानुसार पौधे को समय–समय पर पानी दिया जाना तथा मिट्टी में समुचित नमी बनाए रखने हेतु निराई गुड़ाई किया जाना आवश्यक है, क्योंकि इसके पनपने के लिये प्रकाश आवश्यक है अतः इसकी सही बढ़ौत्तरी के लिये इसके आस–पास की झाड़ियों को हटाया जाना आवश्यक है।

वृद्धि की दरः

इसका पौधा 1,2 व 3 वर्ष बाद क्रमशः 8 से.मी., 30 से.मी. व 90 से.मी. का होता है। यह अत्यधिक धीमी गति से बढ़ने वाला वृक्ष है, इसकी 4–5 वर्ष तक देखभाल व निराई गुड़ाई की जाना आवश्यक है। महुए का बढ़ता हूआ वृक्ष 10वें अथवा 12वें साल में फल देना आरम्भ कर देता है। आरम्भ में प्रति वृक्ष 5 कि.ग्रा. बीज आता है। 20वें वर्ष में आयाल–सीड का उत्पाद बढ़कर 20 कि.ग्रा. हो जाता है। महुवे के वृक्ष 60 वर्ष तक फल देते रहते है। परिपक्व वृक्ष से बीज का उत्पादन 72 कि.ग्रा. तक हो सकता है।

उपयोग :

महुआ का मीठा फूल आदिवासीयों का भोजन है तथा मदिरा बनाने के काम आता है। परिपक्व महुवे के पेड़ से प्रति वृक्ष महुवा के फूल का औसत उत्पादन 75 कि.ग्रा. से 150 कि.ग्रा. तक होता है। इसके गूदेदार फूल में शक्कर, विटामिन और कैलश्यिम होता है। यह वृक्ष आदिवासियों की जीविका का साधन है और कल्पवृक्ष के समान लाभप्रद है। इसके बीजों से 51 प्रतिशत तेल निकलता है जो साबुन बनाने के काम आता है। इसके फूल जंगली जानवर पशु पक्षी भी खाते है। इसकी इमारती लकड़ी मजबूत होती है लेकिन टेड़े तिरछे रेशों के कारण सूखने पर आरी कठिनाई से चिराई होती है।

सफेदा

वनस्पति नाम : यूकेलिप्टस केमेल्डुलेन्सिस
हिन्दी नाम : सफेदा
अंग्रेजी नाम : युकेलिप्टस

सफेदा एक सुन्दर, सदाबहार और तेजी से बढ़ने वाला वृक्ष है। यह वृक्ष आस्ट्रेलियां के वनों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। इसकी अनेक विशेषताओं के कारण इसे विभिन्न देशों एवं राज्यों में वन विभाग और कृषकों द्वारा बड़े पैमाने पर राजकीय एवं निजी भूमि पर उगाया जा रहा है। सफेदे की कुल 600 से अधिक किस्में है किन्तु राजस्थान के लिए युकेलिप्टस कमेल्डुलेंसिस एवं यूकेलिप्टस टेरिटिकोर्निस किस्में उपयुक्त पाई गई है। जिसके बीज राजस्थान नहर क्षेत्र के प्लान्टेशनों से अथवा वन विभाग के मार्ग वृक्षारोपण अथवा पौधशाला के पेड़ों से प्राप्त किये जा सकते है।

फूल, फल एवं बीज :

सफेदा तीन वर्ष की आयु में ही फूल देने लगता है परन्तु पांच वर्ष की आयु में फूलों की मात्रा प्रचुर हो जाती है और तब यह अच्छी किस्म का बीज देने लगता है। इसके बीज साल में दो बार अक्टूबर एवं मई के माह में आते है। बीज को धूप में सूखाकर कीटनाशक दवा मिलाकर कई साल तक रखा जा सकता है। एक किलो वजन में लगभग 3 लाख बीज होते है।

उपयुक्त वृक्षारोपण स्थल :

सफेदा सीधा एवं तेजी से बढ़ने वाला वृक्ष है जिसकी शाखाएं तने से सटी होने के कारण भूमि पर ज्यादा छाया नहीं डालती। इन कारणों से ही यह खेतों की मेढ़ो एवं पानी की नालियों के किनारे लगाने के लिए बड़ा ही उपयुक्त पौधा है।

सफेदे के लिए क्षेत्र की मिट्टी उपजाऊ और काफी गहराई तक होनी चाहिए। उस क्षेत्र में जल निष्कासन भी अच्छा होना आवश्यक है। यह वृक्ष हल्का पाला तो सहन कर सकता है परन्तु सूखे को सहन करने की क्षमता इसमें नहीं है। इसकी अच्छी बढ़ोतरी के लिए जमीन क्षारीय न हो और न ही अम्लीय। रेतीली भूमि जिसमें सिंचाई की सुविधा उपलब्ध नहीं हो, सफेदे के लिए उपयुक्त नहीं है। पहाड़ी ढलानों, कन्दराओं तथा मिट्टी के कटाव वाले क्षेत्रों में भी इसकी ठीक बढ़ोत्तरी नहीं होती और अन्त में पेड़ मर जाते है।

पौधशाला तकनीक :

युकेलिप्टस की पोध उगाने के लिए माह सितम्बर–अक्टूबर अथवा फरवरी–मार्च में क्यारियों में बीजारोपण किया जाता है और अंकुरण होने के बाद पोलीथीन की थैलियों में 5 से 10 से.मी. की ऊंचाई के पौधों का प्रतिरोपण किया जाता है।

सफेदा के बीज बोने के लिए मिट्टी, रेत व खाद का 1:1:1 के समानुपात में मिश्रण बना कर जमीन की सतह से 20 से.मी. अधिक ऊंचाई की 10ग1 मी. की क्यारियों (रेजड बेड्स) बनाई जाती है और क्यारियों के चारों तरफ पानी देने की नाली बनी होती है। युकेलिप्टस का बीज अत्यधिक बारीक होने के कारण इसे रेत में लिमाकर बोने से पोधे गुच्छों में नहीं उगते। युकेलिप्टस का बीज 5 से.मी. की दूरी पर 1 से.मी. चौड़ी व 0.3 से.मी. गहरी लाइनों में बिजाई की जाकर इसे रेत से ढक देते है। एक क्यारी बिजाई के लिए 200 ग्राम बीज पर्याप्त है। बीज बोने के बाद क्यारियों को घास के छप्पर से ढक देते है। क्यारियों में पानी चारों तरफ की नाली में भरें, पानी

निथार (परकोलेशन) से आता है। लेकिन बीज उगने से पूर्व बीज को घास के छप्पर से ढक कर बारीक झारे से पानी देना उपयुक्त है। 4 से 8 माह में पौधे वृक्षारोपण के योग्य हो जाते है।

सफेदे के वृक्ष लगाने के लिए हल चलाकर भूमि तैयार की जाती है। तैयार भूमि में 45ग45ग45 से.मी. गहराई के गढ्ढें खोदने चाहिए। सफेदा लगाने का सबसे अच्छा तरीका पौधारोपण द्वारा ही है। 30 से 45 से.मी. (1 से 1 1/2 फुट) लम्बे पौधे रोपण हेतु उपयुक्त होते है लेकिन इनका तना सुदृढ़ होना चाहिए ताकि पौधे को सहारे की आवश्यकता न हो। ये पौधे वन विभाग की पौधशालाओं से प्राप्त किये जा सकते है।

पौधरोपण वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में करना उपयुक्त और लाभकारी होता है। जहां सिंचाई के लिए साधन उपलब्ध हो वहां यह पौधें मार्च से अक्टूबर तक कभी भी लगाये जा सकते है।

खाद की मात्रा :

- आधी तगारी सड़ी हुई गोबर की खाद प्रत्येक खड्डे में मिलानी चाहिए।
- अच्छी बढ़ोतरी के लिए पौधरोपण करते समय 50 ग्राम केस्टर केक तथा 10 ग्राम सुपर फास्फेट उर्वरक प्रति पौधा लगाना लाभकारी है।
- पांच बार में कुल 1.25 क्विं. यूरिया प्रति है० लगाने से सफेदे के पौधे तेजी से बढ़ने लगते है। एक पौधे को एक बाल्टी पानी के साथ 100 ग्राम से अधिक यूरिया नहीं देवें। यूरिया के अलावा माईक्रो न्यूट्रिऐन्टस देवें।

पौधारोपण विधि एवं सावधानी :

पौधारोपण के समय निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :–

1. इन पौधों को दीमक काफी नुकसान पहुँचाती है अतः पौधा लगाने के साथ प्रत्येक गढ्ढे में 5 सी.सी. एल्ड्रीन (30 ई.सी) एक बाल्टी पानी में मिलाकर डालनी चाहिए।
2. पौलीथीन की थैली को तेज ब्लेड से इतनी सावधानी से काटना चाहिए कि थैली तो मिट्टी से अलग हो जावे परन्तु मिट्टी का पिण्ड न टूटे अन्यथा पौधे की जड़ों को नुकसान हो जाता है जिससें पौधे कुछ समय बाद सूख कर मर जाते है।
3. पौधाशाला से पौधे लाने के बाद शीघ्रातिशीघ्र उन्हें रोपित कर दें।
4. पौधारोपण के समय यह ध्यान रखा जावे कि पौधे की जड़ न मुड़े एवं तना भी सीधा रहे।
5. पौधारोपण करने के बाद गड्ढे की मिट्टी को पौधे के चारों तरफ डालकर दबा दें। मिट्टी से पौधे की जड़ को ही दबावें। तने को मिट्टी में नहीं दबावें अन्यथा दीमक लगने की सम्भावना बढ़ जाती है।
6. आरम्भ में पौधे को थोड़ा पानी भी दें।
7. पशुओं तथा मनुष्यों से पौधों को सुरक्षित रखने के लिए पूर्ण देखभाल करें।

सिंचाई :

सफेदा सूखा सहन करने की क्षमता नहीं रखता। इसलिए यह जरूरी है कि सिंचाई के बारे में बड़ा सर्तक रहना होगा। वर्ष में अधिकांश दिन शुष्क रहने वाले क्षेत्रों में पौधारोपण के प्रथम वर्ष में सिंचाई प्रति पखवाड़ा और दूसरे वर्ष में माहवारी करना वांछनीय है। यदि सिंचाई में कमी होगी तो उसका प्रभाव सफेदे के पौधे की बढ़ोतरी पर पड़ता है।

शुष्क क्षेत्रों में प्रत्येक वर्ष वृक्षारोपण क्षेत्र में हल चलाकर गुड़ाई (Hoeing) करने से नमी संरक्षण में सहायता मिलती है और वृक्ष तेजी से बढ़ते है।

वृद्धि दर :

युकेलिप्टस के पौधे तेजी से बढ़ते है लेकिन वृद्धि दर वृक्षारोपण स्थल की उत्पादन शक्ति एवं पौधों की देखभाल पर निर्भर है। युकेलिप्टस की वृद्धि दर के आधार पर इसकी 5 क्वालिटी क्लास बनाई गई है। इसमें से 1,2 व 3 क्वालिटी के पेड़ 10 वर्ष में क्रमशः 18,13 व 8 मीटर ऊंचाई व 14.0, 10.2 व 6.3 से.मी. व्यास का तना विकसित कर लेते है। प्रति हैक्टर 1000 वृक्ष उगाने पर 10 वर्ष की आयु में प्रति हैक्टर उत्पादन क्रमशः 122.7, 45.9 एवं 9.9 घन मीटर होता है।

पौधों का पालन–पोषण :

1. दीमक का प्रकोप होने पर 5 मि.ली. एल्ड्रीन (तरल) सिंचाई के समय वर्ष में 2 बार दिया जावे।
2. कृषि वानिकी के उद्‌देश्य से यदि पौधे खेत की परिधि पर उगाये है तो उनकी जड़ें फैलकर खेती की पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है। ऐसी स्थिति में 3 वर्ष बाद पौधों की पंक्ति से 2 मी. की दूरी पर, खेत की क्यारियों एवं पंक्तियों के बीच 30 से.मी. चौड़ी और 1 मी. गहरी खाई खोदने से कृषि उत्पादन पर कोई प्रतिकूल असर नहीं पड़ता।

उपयोग :

1. युकेलिप्टस की लकड़ी, बिजली के खम्बे, लकड़ी के खोके, बल्ली अथवा मकान में खम्भे के उपयोग में ली जाती है।
2. इसकी लकड़ी कागत की लुगदी बनाने के काम में भी ली जाती है।
3. इसके पत्तों से सुगंधि देने वाला तेल निकलता है जो औषधि बनाने के काम आता है।
4. इसके ठूंठों से फुटान द्वारा पुनरोत्पत्ती होती है। अतः कल्लों से फुटान के द्वारा प्रति 10 वर्ष बाद 3 बार फसल ली जा सकती है। सिंचित फसल को खाद आदि देने पर 4–5 वर्ष बाद ही कटान किया जा सकता है।

शीशम

लेटिन नाम : **डेलबर्जिया सिसू Dalbergia Sissoo**

हिन्दी नाम : **शीशम**

वर्णन एवं उपलिब्ध :

यह एक बड़े आकार का वृक्ष है। इसकी छाल भूरे व हल्के स्लेटी रंग की होती है। छाल में लम्बी धारियां होती है। यह 23 डिग्री से 30 डिग्री उत्तरी अक्षांश के बीच अर्द्ध शुष्क, नमी वाले क्षेत्रों, नहरों व नदीयों के तटवर्ती क्षेत्रों में पाया जाता है। राजस्थान के पूर्वी मैदानी इलाकों तथा पश्चिमोत्तर राजस्थान के नहरी क्षेत्रों में बहुतायत से रोपित किया गया है।

उपयुक्त जलवायु :

इसके लिए 500–4000 मि.मी. वार्षि वर्षा उपयुक्त है। इसमें 3 से 6 माह तक सूखा मौसम सहन करने की क्षमता होती है। इसके लिये औसत अधिकतम तापमान 35–45 डिग्री सै., औसत न्यूनतम तापमान –2 से –5 डिग्री सै. व और वार्षिक तापमान 18–26 डिग्री सै. होना चाहिये। यह रेतीली मिट्‌टी में ज्यादा अच्दा पनपता है। लेकिन नहरों के किनारे हल्की दूमट मिट्‌टी में भी रोपित किया जा सकता है।

फल, फूल एवं बीज :

नये पत्ते फरवरी–मार्च मे उगते है। पतझड़ से जरवरी–फरवरी में पत्ते गिर जाते है। नवम्बर से फरवरी में वृक्षों पर फलियां लगती है। जिन्हें पौधे बीजारोपण अथवा पौधशाला में पौधे उगाने हेतु फरवरी मार्च में एकत्रित किया जा सकता है। सामान्यतः 1 किलोग्राम में 53000 बीज होते है। सूखी फलियों से बीज आसानी से नहीं निकल पाता है। अतः फलियों के बीज युक्त टुकड़े बोये जाते है।

पौधारोपण विधि :

प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले वृक्षों की जड़ों से विकसित कल्ले (रूट सकर्स) द्वारा पौधों की पुनरोत्पत्ति होती है। वृक्षारोपण हेतु पौधे क्यारियों में अथवा 28ग12 से.मी. ग 200 गेज की पोलीथीन की थैलियों में उगाए जाते है। क्यारियों में उगाए पौधों की वृद्धि तेजी से होती है और सुदृढ़ तने व जड़ो का विकास होता है। इनसे अगले वर्ष (1 वर्ष बाद) रूट –शूट कटिंग जिनमें 9 ''जड़ का भाग व 1'' तने का भाग होता है, तैयार किये जा सकते है। जनवरी एवं फरवरी मास में पोलीथीन की थैलियों मे बोये गये पौधे भी 5–6 माह बाद वर्षा ऋतु में वृक्षारोपण योग्य हो जाते है।

क्योंकि सूखी फलियों से बीज निकालना मुश्किल होता है अतः फलियों के टुकड़ों को साफ कर नर्सरी में अंकुरण क्यारियों में बो दिया जाता है। अंकुरण होने पश्चात् जब क्यारियों में से पौधे लगभग 4–6 सेमी बड़े हो जाते है, उन्हें पिकिंग कर थैलियों में रोपित कर दिया जाता है।

इसके अतिरिक्त एक वर्ष पूर्व उगाए शीशम के पौधों से रूट शूट कटिंग तैयार कर माह फरवरी में सीधे ही पोलीथीन बैग्स में रोपित कर किया जाता है जो ॅचतवनज होने पर सामान्य पौधे से तेजी से बढ़ते है। सामान्यतः उपरोक्त विधियों से तैयार पौधे जुलाई तक रोपण योग्य हो जाते है। पौधारोपण से पूर्व 45 से 50 से.मी. घनाकार खड्डे समय से पूर्व तैयार कर लिये जाते है ताकि मिट्‌टी का समुचित उपचार हो सके। मानसून आने पर अच्छी वर्षा के तुरन्त बाद पौधारोपण कर दिया जाता है।

सार–सम्भाल :

रोपण उपरान्त प्रथम वर्ष में पौधे को लगभग 2–3 बार पानी पिलाने तथा इतनी ही बार निराई–गुड़ाई की आवश्यकता होती है। द्वितीय वर्ष में अप्रैल, मई व जून के महीनों एवं अक्टूबर, फरवरी व मार्च में 4–5 बार पानी

पिलाने तथा सिंचित करने के बाद निराई–गुड़ाई से तेजी से बढ़ोतरी होती है। तृतीय, चतुर्थ एवं पांचवे वर्ष में मृदा में नमी की स्थिति तथा मानसून वर्षा के बाद निराई–गुड़ाई का कार्य किया जाता है।

बढ़ोतरी की दर :

असिंचित फल के रूप में इसके वृक्ष वर्ष में 63 से.मी. गोलाई व 12 मीटर ऊंचाई तक बढ़ सकते है। 25 वर्ष की आयु तक शीशम के वृक्ष तेजी से बढ़ते है और वृक्ष का व्यास 32 से.मी. व ऊंचाई 16 मीटर तक हो जती है 20 वर्ष की आयु पर इमारती लकड़ी का प्रति वृक्ष उत्पादन 5.7 घन फुट अथवा 0.16 घन मीटर होगा बड़ी साइज की इमारती लकड़ी प्राप्त करने के लिये शीशम के वृक्ष को सिंचित कर 25–30 वर्ष बाद काटना प्रस्तावित है।

सामान्य गुण :

यह प्रकाश चाहने वाला तथा विषम जलवायु परिस्थितियों से कम प्रस्तावित होने वाला वृक्ष है यह coppice? तथा root suckers से पनपने वाल पौधा है यह वृक्ष जहां एक और छाया प्रदान करता है वही नाइट्रोजन स्थिरीकरण कर भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाता है।

उपयोग :

शीशम के वृक्ष अच्छी इमारती लकड़ी प्राप्त करने के लिये। कटे वृक्ष के ठूंठ से कल्ले स्फुटित होना। जड़ो से कल्ले विकसित होना। रोपित किये जाते है। इसकी लकड़ी पक्की, सुन्दर व मजबूत होती है और फर्नीचर बनाने के काम में आती है। इसकी लकड़ी सामान्यतः दरवाजे बनाने, कृषि औजार बनाने एवं हॉकी स्टिक बनाने के काम आती है एवं ईधन के उपयोग में ली जाती है। इसकी पत्तियां व फलियां चारे के रूप में उपयोग में ली जाती है। वृक्षों को मधुमक्खी पालन भू–संरक्षण एवं छाया के लिये वृहत् पैमाने पर लगाया जा रहा है।

सागवान

वनस्पति नाम : **टेक्टोना ग्रेंडिस (Tectona grandis)**
हिन्दी नाम : **सागवान**
अंग्रेजी नाम : **टीका**

सागवान एक विशाल पर्णपाती वृक्ष है जिसका छत्र गोल होता है। उपयुक्त जलवायु, गहरी उपजाऊ मिट्टी में एवं अनुकूल परिस्थितियों में इसके वृक्ष काफी बड़े आकार (व्यास एवं ऊँचाई) तक बढ़ सकते है। दक्षिण मालावार में 58.5 मीटर अथवा 192 फीट की ऊँचाई एवं 4.82 मीटर अथवा 15फीट 10 इं की गोलाई के वृक्ष की नपती की गई है। सागवान प्राकृतिक रूप से दक्षिण भारत में पाया जाता है। राजस्थान में प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले सागवान की उत्तरी सीमा है। सागवान के वन अरावली पर्वत श्रृंखला के पश्चिमी भाग में 24–42 डिग्री उत्तरी अक्षांश तक उदयपुर जिले में खेरवाड़ा एवं सलूम्बर के वनों में डूंगरपुर एवं बांसवाड़ा के वनों में, चित्तौडगढ़ जिले के प्रतापगढ़ क्षेत्र में झालावाड़ जिले में पिड़ावा एवं इकलेरा तहसील में एवं बांरा में किशनजंग, नाहरगढ़ एवं छावड़ा तहसील में पाये जाते है। भारत में सागवान के वन विन्ध्याचल के दक्षिण में सभी प्रांतों में पाये जाते है। लेकिन राजस्थान में पाये जाने वाला सागवान निम्न कोटी का होता है और ऑल इण्डिया क्वालिटी की न्यूनतम चतुर्थ क्वालिटी के तुल्य भी नहीं है।

सागवान के वृक्ष विभिन्न प्रकार के भौमिक संरचनों (जियोलोजिकल फारमेशन) एवं मिट्टी में पनप सकते है। लेकिन इनके लिये अच्छी जल निकासी वाली जमीन आवश्यक है। सागवान के वृक्ष ट्रेप रॉक एवं ग्रेनाइट नीस व शिस्ट प्रकार की भूगर्भीय चट्टानों से निर्मित भूमि पर प्राकृतिक रूप से उगते है। ट्रेप रॉक पर पाये जाने वाले वनों में सागवान के वृक्ष बहुतायत से होते है लेकिन इनकी बढ़ोतरी कम होती है। अन्य वर्णित भूगर्भीय संरचना में सागवान के वृक्षों का अनुपात कम होता है लेकिन इनकी बढ़ोतरी अच्छी होती है। सागवान के पेड़ क्वार्टजाइट की पठारी भूमि एवं लेटराईट भूमि पर ठीक से नहीं बढ़ पाते।

सागवान के वृक्ष 750 मिली मीटर से 2500 मिली मीटर, औसत वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों एवं 2 डिग्री सेलसियस से 48 डिग्री सेलसियस के वार्षिक औसत तापमान में पाये जाते है लेकिन एकरूपता वाली जलवायु (इक्यूबल क्लाइमेट) अधिक उपयुक्त रहती है। सागवान की प्राकृतिक उत्पत्ति के क्षेत्रों में पाला नहीं पड़ता और यह पाले के प्रति संवेदनशील है। सागवान के पौधे एवं वृक्षों को प्रकाश एवं ऊपर बढ़ने के लिये खुली जगह नितान्त आवश्यक है। इसके वृक्षारोपण स्थल के निकट झांड़ियों आदि से प्रतिस्पर्धा एवं निकटवर्ती वृक्षों की छाया इसके लिये घातक है और इसका शीर्षस्थ सीरा सूख जाता है।

पत्ती फूल–फल एवं बीज :

सागवान की पत्ती लम्बोदर एवं गोलाकार होती है। यह 30 से 60 सेमी लम्बी और 20 से 30 सेमी चौड़ी होती है। इसका पत्ता ऊपर की तरफ खुर्दरा व मोटा होता है, लेकिन नीचे की तरफ मुलायम रोम होते है। सागवान के पत्ते नबम्बर से जनवरी झड़ना आरम्भ हो जाते है और नये पत्ते वर्षा आरम्भ होने पर अप्रैल से जून के मध्य आते है। सागवान के वृक्ष पर फूल वर्षा ऋतु में आते है। इसका पूष्प समूह 45 से 90 सेमी लम्बा होता है। इसके पूष्प सफेद व सुगन्धित होते है। सागवान का फल दिसम्बर–जनवरी में पकता है। इसका फल गोलाकार 10 से 15 मि.मी. व्यास का, एक बारिक झिल्ली से ढ़का होता है। इसके अन्दर कठोर, भूरे रंग के रोयेदार छिलके से ढ़के हुये 1 से 3 बीज होते है। इसके बीज गोल–सफेद–चार से आठ मि.मी के होते है। एक किग्रा में 2000 से

3100 बीज होते है। एक वर्ष भण्डार में रखे बीजों का अंकुरण ताजे एकत्रित बीजो से अच्छा होता है। इसका बीज कठोर छिले के ढ़का होने के कारण अंकुरण मुश्किल से होता है और पूर्व–उपचार आवश्यक है।

अंकुरण हेतु बीज उपचार :

1. सगवान के बीजों को 24 घण्टे पानी में भीगोकर 48 घण्टे तेज धूप में सूखाने का क्रम 6 से 8 सप्ताह निरन्तर करते रहने पर फल का छिल्का नरम हो जाता है। इसके बाद फलों को बो दिया जाता है।
2. घास व पत्तों की हल्की ऑच में फल को जलाकर भी बीज को उपचार किया जा सकता है।
3. फल को गोबर व पानी के गाढ़े मिश्रण में अथवा गोबर की तह में 10 से 15 दिन रखकर भी शीघ्र अंकुरण प्राप्त किया जा सकता है।
4. सगवान के फल को 1 मीटर गहरे व 1 मीटर वर्गाकार अथवा लम्बे गढ्ढे में 15 से.मी. मोटी तह से ढक दिया जाता है। इसके चारों कोनों पर पोले बांस के टुकड़े खड़े रखे जाते है। बीज व खाद की तह इसी क्रम में रखकर ऊपर से 15 से.मी. मिट्टी से ढक कर बांस के टुकड़ो से पानी दिया जाता है। एक दिन छोड़कर एक दिन पानी देने का क्रम 10–12 दिन तक निरन्तर चलता रहता है। इसके बाद 4–5 दिन तक बीजों को सूखाकर भण्डार में रख लिया जाता है। यदि बीज का छिलका नरम नहीं पड़ा हो तो इस प्रक्रिया को 2 अथवा 3 बार दोहराया जा सकता है। इस प्रकार 45 दिन में बीजों का ठीक से उपचार हो जाता है।

पौधशाला विधि :

राजस्थान की शुष्क जलवायु में सागवान का बीज 10ग1 मीटर की समतल अथवा धरातल से लगभग 10 से.मी. नीचे बनी क्यारियों में 7.5ग7.5 से.मी. की दूरी पर लाइनों मे फरवरी–मार्च में बो दिया जाता है। इसका बीज 15–20 दिन में अंकुरित हो जाता है। प्रथम बारिश में पौधों को पौधशाला में अन्य क्यारियों से 15ग15 से.मी. की दूरी पर प्रतिरोपित कर दिया जाता है। वर्ष बाद अथवा अगली बारिश से पूर्व सागवान के पौधे धरती की सतह पर (collar region) 1 से 2 से.मी. व्यास के हो जाने पर रूट–शूट अथवा स्टम्प कटिंग बनाने के लिए उपयुक्त रहते है। राजस्थान की शुष्क जलवायु में फरवरी माह में स्टम्प कटिंग जिसमें मुख्य जड़ का 20 से.मी. भाग और तने का 2 से 4 से.मी. की पोलीथीन थेलियों में प्रति रोपण कर, पूर्व–स्फुटित (pre-sprouted) कटिंग्स मिट्टी के पिण्ड सहित वृक्षारोपण करने से बेहतर सफलता प्राप्त की गई है। अधिक वर्षा वाले नमीयुक्त क्षेत्रों में अथवा सिंचित व ृक्षारोपण के लिए पोलीथीन की थैलियों में (30ग12 से.मी.) 4–5 महीने के समूचे पौधे वृक्षारोपण के लिए उपयुक्त रहते है।

पौधारोपण के बाद आवश्यक देखभाल :

1. पौधरोपण के 3–4 सप्ताह पश्चात् चारों तरफ 120 से.मी. क्षेत्र में घास व झाड़ियां जड़ सहित उखाड़कर, जुलाई माह के अन्त तक पहली निराई–गुड़ाई का काम पूरा कर लेना आवश्यक है। अगस्त क प्रथम सप्ताह में पौधे के चारों तरफ 30 से.मी. की दूरी तक 60 से.मी. व्यास का घेरा बनाकर 20 से 30 ग्राम यूरिया पौधे से दूरी पर छिड़क कर मिट्टी से भर दिया जावे। अगस्त के दूसरे व चौथे सप्ताह में दो बार निराई–गुड़ाई का कार्य एंव मृतक पौधों के स्थान पर नये पौधे लगाने का कार्य प्राथमिकता से किया जावे। 15 सितम्बर से 15 अक्टूबर तक तीसरी बार की निराई–गुड़ाई की जावे। अक्टूबर–नवम्बर में दीमक का प्रकोप होने पर एल्ड्रिन 30 ई.सी. दवा का घोल देवें।
2. दूसरे वर्ष में अगस्त में प्रथम गुड़ाई एवं सितम्बर–अक्टूबर में निराई–गुड़ाई की जावे। पौधों के आस–पास बेल उगने लगे तो उन्हें काट देवें। पौधों को पशुओं से नुकसान न हो और आग न लगे।

पेड़ों की छँटनी अथवा थिनिंग :

2 ग 2 मीटर की दूरी पर चौथी क्वालिटी के रोपित सागवान के पौधों की ऊँचाई 5–6 मीटर होने पर दसवें वर्ष में बढ़ोतरी में पिछड़े अथवा दबे हुए पेड़ काट कर हटा दिये जाते है और वृक्षों की संख्या 1610 प्रति हैक्टर रखी जाती है। 15 वें एवं 20 वें वर्ष में पेड़ों की संख्या क्रमशः 1124 एवं 857 प्रति हैक्टर रखी जाना प्रस्तावित है। आरम्भ में सागवान के पौधे पास–पास लगाने से उनमें प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा होती है। पेड़ सीधे व लम्बाई में बढ़ते है। बाढ़ में धरती से खुराक पाने के लिए जड़ें गहरी जाती है और इनका विस्तार होता है। इनकी पारस्परिक प्रतिस्पर्धा कम करने और प्रत्येक वृक्ष को पार्याप्त पोषक तत्व एवं वृद्धि के लिए स्थान उपलब्ध कराने के लिए छँटनी आवश्यक है।

40 से.मी. से कम गोलाई के सागवान के वनों में पेड़ो की दूरी श्री सगरय्या के सूत्र के अनुसार क्=1.5 (क़4) रखी जाती है। क् से अभिप्राय पेड़ों की दूरी फुटों में और क पेड़ का जमीन से 4 1/2 फीट ऊँचाई पर व्यास इंच में है।

वृद्धि दर :

सागवान के वृक्ष अच्छी नस्ल के बीज से उगान पर अनुकूल परिस्थितियों में तेजी से बढ़ते है। पहली क्वालिटी के पौधें 1 वर्ष में 1.6 मीटर के हो जाते है। 50 वर्ष की आयु तक इसके वृक्ष तेजी से बढ़ते है। पहली, दूसरी व तीसरी क्वालिटी के वृक्ष 50 वर्ष में क्रमशः 55, 40 व 26 से.मी. व्यास और 33, 27 व 21 मीटर ऊँचाई के हो जाते है। ाजस्थान की जलवायु में इसकी बल्ली 20 वर्ष में प्राप्त की जा सकती है।

उपयोग :

सागवान की लकड़ी हल्के, पीले, सुनहरी रंग की होती है। इसमें स्थित तैलीय तत्वों के कारण इसकी लकड़ी मजबूत और टिकाऊ होती है। इमारती लकड़ी के विभिन्न गुणों की तुलना करने के लिए सागवान की लकड़ी को इकाई माना गया है।

सागवान की लकड़ी के दरवाजे के निर्माण में, फर्नीचर बनाने एवं प्लाईवुड बनाने में काम ली जाती है। दुनिया की अच्छी से अच्छी लकड़ी में इसकी गिनती होती है।

अरडू

बोटेनिकल नाम : आइलेन्थस एक्सेलसा (Ailanthus excelsa)
स्थानीय नाम : अरडू, महारूख
अंग्रेजी नाम : ट्री ऑफ हेवन

विवरण :–

यह वृक्ष भारतीय उप महाद्वीप के मैदानी भाग प्राकृतिक वनों में एवम् गांवों के निकट गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, उत्तरप्रदेश में बहुतायत से पाया जाता है। यह बड़े आकार का वृक्ष होता है जिसकी ऊँचाई 18 से 24 मीटर तक होती है। इसकी पत्तियां एक विशेष प्रकार की गंध होती है। यह सूखे एवम् पाले से अत्यधिक प्रभावित होता है। इसमें जड़ के निकट काटने पर कॉपिस अथवा कल्लों के फुटान से पुनरोत्पादन की क्षमता होती है। यह पानी के भराव से अत्यधिक कुप्रभावित होता है।

इसके लिए 600 से 1200 मि.मी. वर्षा उपयुक्त है यद्यपि यह 400 मि.मी. औसत सालाना वर्षा से भी पनप सकता है। इसको अर्द्ध मरूस्थलीय क्षेत्रों में भी उगा सकते है। तथा औसत वार्षिक तापमान 14 डिग्री सैलसियस से 38 डिग्री सैलसियस तक होना चाहिये।

राज्य में प्राकृतिक वितरण :

यह राजस्थान के गैर मरूसिलीय जिलों में पाया जाता है। विशेषकर जयपुर, अजमेर, पाली, सीकर, अलवर, भरतपुर, सवाईमाधोपुर जिलों में बहुतायत से मिलता है। जयपुर जिले में इसके पत्तों को चारे के रूप में उपयोगी होने के कारण कृषि भूमि की मेड़ों पर विशेष तौर पर वृक्षारोपण किया हुआ है।

फूल, फल एवम् बीज :

इसमें हल्के पीले रंग के छोटे आकार के फूल माह फरवरी से मार्च तक आते है। इसकी फली (समारा) माह मई, जून तक पक कर तैयार हो जाती है। इसकी फली को पेड़ों से ही एकत्रित किया जा सकता है, क्योंकि ये अत्यधिक हल्की होने के कारण उड़ जाती है। फलियों को धूप में सुखाकर कूटकर बीज को एकत्र कर लिया जाता है। इसके बीज की अंकुरण क्षमता स्टोर में रखने पर घटने के कारण एक वर्ष उपरान्त इनका अंकुरण प्रतिशत कम हो जाता है। एक किलोग्राम बीज में करीब 9500 बीज होते है। इसकी अंकुरण क्षमता 90 प्रतिशत होती है।

पुनरोत्पादन विधि :

प्राकृतिक तौर पर इसका अंकुरण नगण्य होता है, क्योंकि इसका बीज इतना हल्का होता है कि यह जगह–जगह उड़कर जमीन में दब जाता है। इसकों उगाने का सबसे आसान एवम् सफल तरीका सीधे ही बीजारोपण द्वारा है जिसमें मृदा कार्य कर 2 से 3 मीटर दूरी पर वर्षा आरम्भ होने से पहले बीज बो दिया जाता है। इसके अतिरिक्त पौधशाला में पौधे तैयार कर पौधारोपण करना अत्यन्त लाभदायक रहता है।

पौधशाला में पौध तैयारी की विधि :

इसके बीज को पूर्व उपचापर की आवश्यकता नहीं है। साफ एवम् ताजा बीज पौधशाला में 12 1/2 ग 30 से.मी. की थैली में सीधा बो दिया जाता है। माह फरवरी में बोया गया बीज भी मानसून तक वृक्षारोपण योग्य हो जाता है। 10–12 दिन में इसका अंकुरण हो जाता है। 45 से 60 दिन में पौधे 30 से.मी. ऊंचाई के हो जाते है। बीज अत्यधिक हल्का होने से इसे बारीक मिट्टी से करीब 5 एम.एम. मोटाई की परत से ढकना आवश्यक है।
छोटे पौधे को कीड़े नुकसान पहुंचा सकते है अतः कीटनाशक दवा का उपयोग आवश्यक है। इसके बेडस बनाने में एक विशेष ध्यान रखने योग्य बात है कि अरडू के बेड्स खुले में बनाये जावे अन्यथा किसी पेड़ आदि की छाया में बनाने पर मानसून में वर्षा के दौरान पेड़ से पड़ने वाली मोटी बूँदें इसकी पत्तियां नष्ट कर देंगी जिसके कारण

समस्त पौधें के मर जाने का अंदेशा है, क्योंकि मोटी बूंदों से जमीन की मिट्टी उछलकर पत्तियों पर छा जावेगी। (बेड्स = क्यारियां)

पौधारोपण से पूर्व उपयुक्त आकार का गढ्ढा समय से पूर्व ही तैयार कर लिया जाता है ताकि मिट्टी का सही उपचार हो सके। मानसून आने पर प्रथम अच्छी वर्षा के तुरन्त बाद थैली को सावधानी पूर्वक हटाकर वृक्षारोपण किया जावे। जल संरक्षण वास्ते अर्द्धचन्द्राकार थांवला बनाकर मिट्टी को अच्छी तरह से दबाते हुए अगस्त व सितम्बर व अक्टूबर में निराई–गुड़ाई की जावे।

स्पर सम्भरन :

प्रथम दो वर्ष, पौधों की अच्छी प्रकार से निराई, गुड़ाई अति आवश्यक है। तथा इसके वृक्षारोपण क्षेत्र की पशुओं की चराई, तथा चूहों से सुरक्षा की जाना जरूरी है। अगर इसकी लकड़ी का उपयोग माचिस आदि के लिए किया जाना है तो इसकी छंगाई (प्रूनिंग) भी प्रारम्भिक व्यवस्था में की जानी चाहिये। अगर वृक्षारोपण का उद्देश्य केवल चारा उत्पादन है तो प्रूनिंग की आवश्यकता नहीं है।

वृद्धि दर :

यह एक अति शीघ्र बढ़ने वाला वृक्ष है। चार वर्ष में इसकी ऊंचाई 4.5 मीटर व गोलाई 32 से.मी. हो जाती है। आसाम की जलवायु में 3 मी ग 3 मी पर 6 वर्ष में यह वृक्ष 5–6 मीटर ऊंचाई तक बढ़ जाता है।

पौधों व वृक्षों को हानि पहुंचाने वाले कीड़े व अन्य रोग :

पौधे को बढ़ी हुयी खरपतवार (Weeds) एवम् पशुओं की चराई से अत्यधिक नुकसान होता है। चूहे भी इसे काफी मात्रा में नुकसान पहुंचाते है। Atteva fabricella, Eligma narsissù के लार्वे छोटी अवस्था के पौधों को नुकसान पहुंचाते है। Batocera rufomaculata glandulos व Alternaria नामक फंगस द्वारा पत्तियों पर धब्बे बन जाते है।

सामान्य विवरण :

यह अधिक प्रकाश चाहने वाला वृक्ष है जो सूखे एवम् पाले से बुरी तरह प्रभावित होता है। इसकी लकड़ी सफेद हल्की तथा साधारण होती है। इससे निम्न स्तर का गौंद भी प्राप्त होता है। छाल तथा गोंद का उपयोग औषधी में किया जाता है।

उपयोग :

इसकी लकड़ी हल्की तथा आरा मशीन से आसानी से चिरने के कारण इसका उपयोग माचिस व पेंकिग कैसेज बनाने में किया जाता है। इसको प्लाईवुड की मध्यवर्ती प्लाई के रूप में भी काम में लिया जाता है। इसकी लकड़ी खिलौने, क्रिकेट के बल्ले प्लाईवुड दरवाजों के बीच की पैकिंग तथा जूतों की एड़ियों में भी प्रयोग में ली जाती है।

इसकी पत्तियां काफी पौष्टिक तथा चराई के योग्य होने से इसको चारे में उपयोग किया जाता है। इनमें 19.8 प्रतिशत प्रोटीन होता है। 8 वर्ष में अरडू के पेड़ 60 कि.ग्रा. पत्ते प्रति वर्ष देने लगते है। जिनसे प्रति वृक्ष 50 रू. की वार्षिक आयक निश्चित रूप से हो सकती है। यह वृक्ष 10 वर्ष में 30 से.मी. व्यास अथवा 94 से.मी. गोलाई का हो जाता है और 10 से 15 वर्ष में कटने योग्य हो जाता है। विशेषकर राजस्थान के जयपुर शहर एवम् निकटवर्ती देहात में इसकी पत्तियों की बिक्री से काफी आय होती है।

पत्तियों में एक विशेष प्रकार की गन्ध के कारण राजस्थान से बाहर की मवेशियां इसे पसन्द नहीं करती वहां पर इसका वृक्षारोपण भू–संरक्षण की रोकथाम व सड़क के किनारे शीघ्र छाया देने वाले वृक्ष के रूप में किया जाता है।

नीम

वनस्पति नाम : अजेडिरेक्टा इंडिका
हिन्दी नाम : नीम
अंग्रेजी नाम : मार्गो

(1) नीम का वृक्ष एक भारतीय वृक्ष है और वैज्ञानिकों ने इसका उद्‌गम भारत को ही माना है। भारत में यह लगभग सभी प्रदेशों में मिल जाता है। यह उत्तर में जम्मू–पंजाब से लेकर दक्षिण में तमिलनाडू और पश्यिम में राजस्थान से लेकर आसाम तक मिलता है।

विवरण :

(2) नीम का वृक्ष लगभग 12 मी. ऊंचा, मध्यम आकार का रोशनी पसंद पेड़ होता है। इसकी पत्तियां 20–40 से.मी. लम्बी पतली टहनी पर आती है और पत्ती लगभग 6 से.मी. लम्बी व 2–3 से.मी. चौड़ी गहरे रंग की होती है। पत्ती का स्वाद बहुत कड़वा होता है। नीम का छत्र घना व मनमोहक होता है। तने की छाल बाहर से गहरे कत्थई रंग की कुछ मोटी गहरी टेड़ी मेड़ी 2 से.मी. तक गहरी धारियों की होती है। छाल अन्दर से ललाईयुक्त होती है।

नीम का फूल सफेद, छोटा और शहद की सी सुगन्ध युक्त होता है। फूल मार्च के आरम्भ से आने लगते है और मई तक रहते है। इसका फल 'निम्बोली' छोटी खिरनी जैसा होता है। यह पकने पर पीला हो जाता है।

अधिकतर नीम सदाबहार ही रहता है, परन्तु राजस्थान जैसे सुखे प्रदेशों में बहुत ही थोड़े समय के लिए इसमें पतझड़ होता है और इसी पतझड़ के साथ नई पत्तियां फूलों के साथ मार्च, अप्रैल में आती है।

नीम से जड़ौले भी नकलते है, अतः बड़े नीम के पेड़ों की जड़ों को चोट पहुंचने पर उनसे नये पौधे बनाये जा सकते है। नीम काटने पर कल्ले भी देता है।

नीम कहां लगाये :

(3) वैसे तो नीम का वृक्ष किसी भी स्थान पर लगाया जा सकता है। परन्तु इसकी विभिन्न विशेषताओं के कारण उपयुक्त स्थान पर लगाने से इसकी सफलता और बढ़ जाती है। इसके सौन्दर्यमयी छत्र के कारण सड़कों के दानों और लगायी गयी नीम की पत्तियां बहुत सुन्दर दृश्य प्रस्तुत करती है। नीम कम वर्षा वाले क्षेत्रों में तथा नागौर, पाली, जोधपुर में अच्छा पनप जाता है, तो यह ज्यादा वर्षा वाले क्षेत्र उदयपुर, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, कोटा में भी खूब बढ़ता है।

नीम काली चिकनी मिट्‌टी के साथ–साथ पथरीली और कम गहरी मिट्‌टी में लागया जा सकता है। ऐसे क्षेत्र जहां पानी ठहरता हो नीम नहीं लगाना चाहिए। ऊसर भूमि जहां अन्य वृक्ष नहीं पनपते वहां पर भी नीम लगाया जाता है और भूमि की उर्वरता बढ़ाता है।

नीम की एक विशेषता यह भी है कि इसका बीज झाड़ियों में उग कर पनप जाता है। खासतौर से बेर, थोर, गागन आदि झाड़ियों से। इसी कारण नंगी पहाड़ियों में जहां थोर आदि की झाड़ियां हो वहां नीम का बीज लगाना उचित रहता है। इससे बीज और पौधे को सुरक्षा मिल जाती है। तेज पाला पड़ने वाले स्थानों पर नीम लगाना उपयुक्त नहीं है, क्योंकि यह पाला बर्दाशत नहीं कर पाता है।

पौधशाला तकनीकी :

(4) नीम का फल 'निम्बोली' वर्षा मे पकने पर पेड़ के नीचे गिर जाती है तो इन्हें एकत्र कर सुखा लिया जाता है। एक किलोग्राम में लगभग 3500 सूखे बीज होते है। नीम के बीज की अंकुरण–क्षमता बहुत कम समय,

लगभग दो सप्ताह तक ही होती है। अतः बीज के पकते ही पूर्व से तैयार नर्सरी के क्यारीं में 15 से.मी. दूरी पर लाइनों में बो दिया जाता है। साधरणतया बीज एक सप्ताह में उग जाता है। अंकुरण के बाद जब पौध 5 से 7 से. मी. की हो जाती है तो खाद, मिट्टी व बालू (1:1:1) के मिश्रण से भरी पोलीथिन की थोलियों में इन्हें लगा दिया जाता है एवं लगभग एक मीटर का होने पर पौधों को वृक्षारोपण स्थल पर लगाया जाता है।

नीम के बड़े पौधे लगाने हेतु पौलीथीन की बड़ी थैली (20ग40) से.मी. अथवा लोहे के प्लांट/एक्सट्रेक्टर गमले काम में लने चाहिए।

वृक्षारोपण :

(5) पौधे लगाने हेतु ग्रीष्म काल में 50ग50ग50 से.मी. के खड्डे तैयार कर लिये जाते है। अधिक वृक्ष लगाने हों तो 3ग3 मी. से 5ग5 मी. की दूरी उपयुक्त रहती है। पौधा लगाने से पूर्व खड्डे की मिट्टी का दीमक की दवा एल्ड्रिन या बी.एच.सी. पाउडर के दो बड़े चम्मच से उपचार कर लिया जाता है। थैली काट कर अलग कर दी जाती है। पौधे को रोपित करते समय जड़ के रोंए नष्ट नहीं हों और मुख्य जड़ मुड़ी हुई न हो इसका विशेष ध्यान रखा जाता है, यदि जड़ मुड़ गई हो तो तेजधार वाले चाकू स काट देनी चाहिए। पौधे का ऊपरी भाग सीधा रखकर चारों और मिट्टी डालकर अच्छी तरह दबा देनी चाहिए और पानी दे देना चाहिए।

पौधारोपण के बाद आवश्यक देखभाल :–

(6) पौधे की तेजी से बढ़ोतरी हेतु समय–समय पर रासायनिक खाद का सिंचाई के साथ प्रयोग भी प्रथम वर्ष में करना उपयुक्त रहता है। नीम का पौधा पाले से बहुत शीघ्र प्रभावित होता है। अतः सर्दी में पाले से बचाने हेतु घास–फूस आदि से ढक देना चाहिए। पौधे के आस–पास उग आने वाली घास–फूस व अन्य खरपतवार हटा कर समय–समय पर गुड़ाई कर देसे से पौधा शीघ्र पनपता है।

भारत में कई भागों में जैस मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक आदि मे तो नीम को काश्त के साथ–साथ लाइनों में 'टांग्या' प्रणाली में भी लगाया जाता रहा है अर्थात् नीम के पेड़ फसल के साथ–साथ लगाये गये है।

उपयोग :

1. **औषधि के रूप में :–** नीम की पत्तियां या कोपलें जो बसन्त ऋतु में पेड़ पर पतझड़ क साथ आती है, वह रक्त को शुद्ध करने में बड़ी लाभकारी मानी गयी है। पत्ती काफी कड़वी होती है। अतः सैंधा नमक के साथ इनको कूट कर भी खाया जा सकता है।

   खसरा और बोथरी माता से उठे हुए रोगियों को नीम के पानी से नहलाना उपयोगी माना गया है। नीम की पत्तियों की हवा, चेचक के रोगी की अन्दरूनी गर्मी को शान्त कर रोगी को आराम पहुंचाती है। नीम के वृक्ष के बारे में ऐसी मान्यता है कि जहां यह वृक्ष होता है वहां मलेरिया रोग नहीं होता। सूखी पत्तियों को जलाने से जहां वायु शुद्ध होती है, वहीं मच्छर भाग जाते है।

   नीम की पत्तियां घनी और गहरे हरे रंग की होती है। इससे वायु का प्रदूषण कम होता है, क्योंकि सूरज की रोशनी से जो प्रकाश संश्लेषण होता है उससे अधिक आक्सीजन वायु मण्डल में प्राप्त होती है। नीम की दातौन से भी ग्रामवासी परिचित है। दिल्ली–बम्बई जैसे शहरों में तो कई व्यक्तियों का जीविकोपार्जन का साधन है इसकी दातौन करने से जहां दातं स्वच्छ रहते है वही उनमें पायरिया आदि बीमारी नीं होती है।

   नीम की इसी उपयोगिता के कारण अनेक औषधि बनाने वाली फर्मो ने नीम का दांतों का मंजन, पेस्ट बाजार मे बिक्री हेतु प्रचलित कर रखा है। फोड़े, फुन्सी के लिए खादी भण्डार का 'नीम साबुन' व अन्य कम्पनियों का मार्गो सोप प्रचलित है। नीम की छाल चाहे यह तने की हो अथवा जड़ की इसको घिस कर फोड़े, फुन्सियों पर लगाने से यह बिमारी मिट जाती है। आयुर्वेद में इसी दृष्टि से छाल का काढ़ा बनाकर पिलाने का उल्लेख है।

2. **इमारती लकड़ी के रूप में :–** नीम की लकड़ी कत्थई लाल रंग लिए मजबूत व टिकाऊ मानी गयी है। इसका वजन प्रति घनमीटर 800 कि.ग्रा. होता है। इसकी लकड़ी में एक प्रकार की बदबू सी होती है, इससे इसमें दीमक नहीं लगती है। नीम की लकड़ी को कृषि–औजार बैलगाड़ियों व घरेलू फर्नीचर हेतु प्रयोग में लाया जाता है। ढ़ोल व ढ़ोलकों में भी नीम की लकड़ी का प्रयोग बहुतायत से किया जाता है। गांवों में नीम की डालियों को बल्लियां थूण आदि के नाम में लिया जाता है। नीम की लकड़ी जलाने के लिए अच्छी नहीं मानी गयी है, क्योंकि इसके धूएं से रोटी और सब्जी धुआंरी हो जाती है।
3. **चारे रूप में :–** नीम की पत्ती यद्यपि खाने में कड़वी होती है तथापि ऊँट और बकरी इसे अत्यन्त चाव से खाते है। वैसे नीम की पत्ती पालतू मवेशियों को भी खिलाई जाती है और इसलिए नीम के ज्यादातर पेड़ जहां सुरक्षा की उचित व्यवस्था नरहीं होती छांग दिये जाते है।
4. **तेल के रूप में :–** नीम की निंबोली से जो तेल निकलता है वह औषधि के रूप में तो प्रयोग में लाया ही जाता है अपितु उसका साबुन भारी मात्रा में बनाया जाता है। खादी भण्डार ने तो इसके तेल से साबुन बनाने का कुटीर उद्योग ही चला रखा है।
5. **छायादार वृक्ष के रूप में :–** नीम का पेड़ घनी छाया देने वाला वृक्ष है। इसकी विशेषता यह है कि गर्मी की ऋतु में इसकी पत्तियां हरी रहती है। जब छाया की भारत में विशेष तौर से आवश्यकता महसूस होती है। इस प्रकार नीम तरू सड़कों के किनारे यात्रियों के लिए सर्दी, गर्मी, बरसात सभी मौसम में उपयुक्त है। इसका छत्र छातानुमा है और देखने में बड़ा सुन्दर लगता है। अतः इसे उद्यानों देवालयों, श्मशान–भूमि, जलाश्यों में विशेष रूप से लगया जाता है।

   नीम में बसन्त ऋतु में इसके सफेद फूलों के गुच्छे सारे पेड़ में लगते है। इनकी भीनी–भीनी सुगन्ध बड़ी मनमोहक हाती है। फूलों पर उड़ने वाले पतंगों की भरमार रहने के कारण पतंगें खाने वाली चिड़ियों की भरमार वृक्ष पर रहती है। फल खाने वाले पक्षियों की तथा तोते, हरियल, बुलबुल, मैना इस पर मंडराते रहते है। वनों में 'सेही' इसकी जड़ों को स्वाद से खाती है और कभी–कभी तो इस प्रकार नष्ट भी कर देती है।

बबूल

लेटिन नाम : एकेशिया निलोटिका (Acacia Nilotica)
हिन्दी नाम : देशी बबूल, सूलिया बबूल, बबूल

विवरण एवं उपलब्धि :

राजस्थान में इसकी दो किस्में पाई जाती है। छतरीनुमा फैले हुद छत्र वाले बबूल को देशी बबूल एवं कू फेलने वाले सरू के आकार का वृक्ष सूलिया बबूल (वैरायटी क्यूप्रेसिफोर्मिस) कहलाता है। यह मैदानी भाग में चिकनी व दूमट मिट्टी में, निचले पर्वतीय ढ़लानों, सड़क एवंनहर के किनारे एवं अर्द्धशुष्क जलवायु में खेत की मेड़ पर पाया जाता है। यह भारत वर्ष के सीाी प्रान्तों में एवं दूमट मिट्टी के मैदानी भाग में 200 से 1270 मि.मी. वर्षा एवं 22 डिग्री सेन्टीग्रेड औसत वार्षिक तापमान पर लगभग समस्त मैदानी क्षेत्र एवं कन्द्रा क्षेत्रों में पाया जाता है। यह पाले के प्रति संवेदनशील है। यह राजस्थान के गैर मरूस्थलीय एवं अर्ध मरूस्थलीय जिलों में बहुतायात से पाया जाता है।

फूल, फल एवं प्राप्ति का समयः

बबूल के फूल जुलाई माह से सितम्बर तक आते है। जो फलियों के रूप में अप्रेल से जून तक पक जाते है। इसका बीज कठोर होता है। इसके प्रति कि.ग्रा. 7000 से 11000 बीज होते है।

पुनरोत्पादन विधिः

यह प्राकृतिक रूप से वर्षा के दिनों में वायु, जल एवं पशुओं द्वारा ले जाए जाने पर बीज द्वारा अंकुरित होता है। इसके अलावा पौधशाला में बीज बोकर पौधे तैयार किये जा सकते है। शीतकाल में मृदा कार्य कर वर्षा से पूर्व मिट्टी के डोले पर लाइनों में बीज बोने पर वर्षा ॠतु में अच्छी तरह अंकतुरित होता है। पौधों की वृद्धि दर, खुदी हुई मिट्टी के डोले की साईज के अनुपात में होती है। खाई फेन्सिंग के डोले पर उगे पौधों की वृद्धि कन्टूर ट्रेंचों से अधिक होते है।

पौधशाला विधि :

बबूल के बीज के कठोर छिलका होने के कारण इसका पूर्व उपचार किया जाना आवश्यक है। इसे निम्न प्रकार से उपचारित किया जाता है।

(1) बीज को ठन्डे पानी में 48 घन्टे तक भिगोकर
(2) 80 डिग्री सेन्टीग्रेड तक गर्म पानी कर गीज को डालकर ठंडा होने तक
(3) दो–तीन दिन तक गीले गोबर में डालकर
(4) 10 से 15 मिनट तक सान्द्र गन्धक के तेजाब में डालकर सही तरीके से पानी से साफ करने से।

उपचारित बीजों को तुरन्त पौधशाला में मिट्टी व खाद से भरकर मार्च के प्रथम सप्ताह में 12 1/2 x 30 से.मी. की पौलीथीन थैलियों में बिजाई कर दी जाती है। इसकी बुवाई माह फरवरी से मार्च तक कर देने पर माह जुलाई तक 4 माह में पौधा वृक्षरोपण योग्य हो जाता है।

सार–सम्भाल :

पौधारोपण के दूसरे वर्ष तक इसकी निराई, गुडाई समय पर करनी चाहिये पांच वर्ष के अन्तराल पर इसकी थिनिंग की जानी चाहिये। थिनिंग का सिद्धांत (थम्ब रूल) हो पौधे की औसत ऊँचाई के बराबर पौधो के बीज की दूरी बनी रहे।

वृद्धि दर :

यदि मिट्टी में नमी बनी रहे तो बबूल अतिशीघ्र बढ़ने वाला पौधो है। औसतन दस वर्ष में पौधे की गोलाई 43 से.मी. तथा लम्बाई 10मी. हो जाती है। लगभग 20 से 25 वर्षो में यह पूर्ण वृद्धि प्राप्त कर लेता है 25 वर्ष में इसकी गोलाई 80 से.मी व ऊँचाई 12मी. हो जाती है। एक पेड़ से 10 वर्ष में 0.113 घन मीअर अथवा 4 घन फुट लकडी प्राप्त होती है। जलाऊ लकडी के लिए इसे 10 वर्ष में काट लेना चाहिये। लेकिन अच्छी इमारती लकड़ी 20 से 25 वर्ष के पेड़ों से प्राप्त होती है।

हानिकारक रोग एवं कीड़ों का प्रकोप :

बबूल का पौधा छाया, अग्नि एवं सर्दी (पाले) के प्रति संवेदनशील है। प्रारम्भिक अवस्था में इसे खरगोश, गिलहरी व चूहों से काफी क्षति पहुंचती है। बड़ा होने पर इसे बकरी व ऊंट की अवैध चराई से अत्यधिक नुकसान पहुंचता है।

इसकी पत्ती को Pailoptera Fastuosa नामक डिफो–लियेटर नुकसान पहुंचाता है। इसकी जड़ों, तने व फलियों में भी कई प्रकार के जीवाणु छेद कर क्षति पंहुचाते है।

सामान्य गुण :

इस वृक्ष को प्रकाश की अधिक आवश्यकता होती है। यह सूखे से कम प्रभावित होता है तथा पाले से अत्यधिक प्रभावित होता है। इसमें कौपिस क्षमता बहुत कम या नगण्य मात्रा में होती है जबकि इसमें पौलार्डिंग की क्षमता काफी अच्छी होती है।

उपयोग :

बबूल सर्वाधिक लोकप्रिय वृक्ष है। यह ईंधन एवं कोयला बनाने के काम में आता है। बबूल के बड़े वृक्षों से प्राप्त इमारती लकड़ी, कृषि उपकरणों, बैलगाड़ी के निर्माण दरवाजे, खिड़कियां, चारपाई के पाये एवं अन्य छोटी इमारती लकड़ी के उपयोग में आती है।

बबूल की छाल से प्राप्त टेनिन चमडा रंगने के काम आता है। बबूल से प्राप्त गौंद Gum Arabic स्याही, रंग–रोगन, माचिस व खाने के काम में होता है।

कॉपिस – वृक्ष के ठूंठ से फुटान द्वारा विकसित पौधे।

बबूल की फली जिन्हें स्थानीय भाषा में पातड़िया कहते है, भेड़–बकरी का स्वादिष्ट एवं पौष्टिक आहार है। इसकी पत्तियां जिन्हें स्थानीय भाषा में लूम कहते है, पशुओं को चराने के काम आती है।

इस वृक्ष की जड़े वायु मण्डल में पायी जाने वाले नाइट्रोजन को नाइट्रोजन यौगिकरण द्वारा अवशोष्य यौगिक मे बदल देती है। जिससे भूमि की उर्वरता बढ़ती है वभूमि पर ली जाने वाली फसलों को अत्यधिक लाभ मिलता है। सूलिया बबूल की छाया खेत की पैदावार के उत्पादन पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं डालती इसी कारण राजस्थान के पाली, नागौर, सीकर, झुन्झुनू, अजमेर व जयपुर जिलों के काश्तकार खेतों पर सूलिया बबूल के पेड़ उगाते है।

पौलार्डिंग – नया फुटान प्राप्त करने हेतु वृक्ष के तने को बीच से काटना।

शहतुत

वनस्पति नाम : मोरस अल्बा
स्थानीय नाम : शहतूत, तूत
अंग्रेजी नाम : मलबरी

विवरण एवं उपलब्धि :

इसका उद्गम स्थल चीन है। यह मध्यम आकार का छायादार वृक्ष होता है, जिसमें मीठे खाने योग्य फल आते है। यह छाया में भी पनप सकता है। इसमें कापिस द्वारा कल्ले अच्छी तरह आते है तथा पोलार्डिंग भी अच्छी होती है। इसमें आग एवम् पशुओं द्वारा चराइ से नुकसान होता है। यह सूखे से अत्यधिक प्रभावित होता है लेकिन पाला सहन कर लेता है।

जलवायु :

यह भारत वर्ष में जम्मू कश्मीर, कर्नाटक, पश्चिमी बंगाल, मध्यप्रदेश में रेशम के किड़े पालने को उगाया जाता है। यह नदियों व नहरों के किनारे तथा नमीयुक्त घाटियों में अच्छी तरह पनपता है। राजस्थान की नमीयुक्त जलवायु में भी इसे रेशम के कीड़े पालने को उगाया जा रहा है। इसकी लकड़ी बहुत उपयोगी है और क्रिकेट के बल्ले, टेनिस रेकिट, हॉकी स्टिक आदि बनाने के काम आता है।

फूल, फल व बीज :

इसमें माह मार्च—अप्रैल में फूल आते है तथा इसका फल मई—जून में पकता है। पांच वर्ष के वृक्ष से फल व बीज प्राप्त किये जा सकते है। बीज एकत्रित करने वास्ते पेड़ से सीधे ही पके फल प्राप्त होते है क्योंकि जमीन पर पड़ें फल में कीड़े लगने का अंदेशा होता है। हाथ में पानी में फल को मसलने से बीज प्राप्त हो जाता है तथा सूर्य की धूप में इसे सुखा लेते है तथा सुखाने के बाद राख या रेतीली मिट्टी में मिलाकर रख लेते है। एक किलों में लगभग 4,50,000 बीज होते है, तथा औसत अंकुरण 10 प्रतिशत होता है। यह दो साल तक स्टोर में सुरक्षित रखा जा सकता है।

पुनरोत्पादन विधि :

प्राकृतिक तौर पर इसका बीज पक्षियों व बहने पानी के माध्यम से ले जाया जाता है। आवश्यक नमी, छाया एवम् पशुओं से सुरक्षित स्थान पर यह प्राकृति तौर पर उग जाता है। इसका कापिस भी अच्छा चलता है। जहां पानी की अच्छी सुविधा हो, वहां इसमें आशातीत वृद्धि होती है। कृत्रिम तौर पर थैलियों में बीज से पौधे तैयार किये जा सकते है तथा रूट शूट कटिंग्स से भी पौधे पनपाये जा सकते है।

सीधे ही थैलियों में बीजारोपण से अच्छे परिणाम नहीं आते। ब्रांच अथवा डाल की कटिंग 20 से 30 से.मी. लम्बी जिसमें कम से कम 3 कोपल अथवा बड्स हो, क्यारियों में ऊपरी सिरा ऊपर रख कर लगाने से भी पौधे तैयार किये जाते है। बीज से उगाए पौधों के पत्ते मुलायम होती है। बडिंग, ग्राफटींग व लेयरिंग के द्वारा भी अच्छे पौधे तैयार किये जा सकते है। रेशम के कीड़े पालने के लिये पौधे अच्छे किस्म की डाल को सामान्य किस्म पर ग्राफ्ट कर उगाए जाते है।

पौधशाला विधि :

इसके बीज के पूर्व उपचार की कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु 30—40 दिन तक नमी वाली मिट्टी में रखने पर अंकुरण अच्छा होता है ठंडे पानी में भिगोकर एक सप्ताह रखने पर एक सा अंकुरण होता है।

मदर बेड में राख मिला उपचारित बीज 20 से.मी. दूरी पर लाइनों में बिजाई कर दी जाती है। सफेद ऑसेनिक को बेड की मिट्टी में मिलाने से कीड़ों का प्रभाव नहीं होता। अंकुरण 7 से 10 दिन के मध्य पूर्ण हो जाता है। इस प्रकार तैयार पौधों को क्षेत्र में रोपित कर दिया जाता है।

अगर वृक्षरोपण का क्षेत्र थोड़ा खराब (refractory) है तो 15 माह पुराना पौधा रोपित किया जाना ठीक रहता है ताकि उसका (root system) अच्छी तरह पनप सके।

रूट–शूट कटिंग वास्ते पौधे को एक या दो साल नर्सरी में संधारित किया जाता है। उसके बाद कटिंग बनाए जाते है। पौधशाला में पौधे ब्रांच कटिंग से भी तैयार किये जा सकते है।

पौधारोपण :

शहतूत का वृक्षारोपण नर्सरी में तैयार किये गये पौधे अथवा प्रि–स्प्राउटेड कटिंग्स से किया जा सकता है। इसे इमारती लकड़ी प्राप्त करने के लिये 3X3 अथवा 4X4 मीटर पर लगा सकते है। राजस्थान में सामान्य वर्षा वाले आदिवासी क्षेत्रों में इसे रेशम के कीड़ों को पालने के लिये उगाया जा रहा है। इसके पत्ते बॉस द्वारा निर्मित चंद्रिका में डाले जाते है। रेशम के कीड़े पालने के लिये इसे खेत में फसल के रूप में लगाया जाता है। सिंचित फल के लिये हल चला कर नियले भाग में 25 से.मी. की दूरी पर बनाई गई (furrows) ऊमरे में 10–10 से.मी. दूर कटिंग्स से लगया जाता है। असिंचित क्षेत्र में कटिंग्स 30X25 से.मी. से 75X75 से.मी. की दूरी पर रोपित करना उचित है। कटिंग्स लगाने का उपयुक्त समय वर्षा ऋतु के आरम्भ में है। इससे पूर्व फरवरी में लगा कर जड़ विकसित करने को सिंचित किया जावें।

देखभाल (टेण्डिंग) :

वृक्षारोपण में पौधों की समय समय पर निराई गुड़ाई की आवश्यकता होती है। थिनिंग करने का आधार प्रारम्भिक अवस्था में पौधोकं की आपस में दूरी व उनमें वृद्धि की दर होती है। रेशम के कीड़े पालने के लिए पत्ते लेने को उपयुक्त तरीके से प्रूनिंग आवश्यक है। (प्रुनिंग = छंगाई)

इसकी वृद्धि की दरी काफी तेज होती है। 10 वर्ष में अच्छी, साइट पर इसकी ऊंचाई 9 मीटर तथा औसत व्यास 11 से.मी. के करीब हो जाता है। शहतुत का वृक्ष आरम्भ में तेजी से बढ़ता है। 10 वर्ष बाद इसकी वृद्धि दर कम हो जाती है।

हानिकारक रोग एवम् कीड़ों का प्रकोप :

यह सूखे से अत्यधिक प्रभावित होता है तथा हल्के पाले को सहन कर सकता है। आग से इसमें काफी क्षेति होती है, पशुओं से इसमें काफी नुकसान होता है। (Diacrisia obliqua) नामक लार्वे इसकी पत्तियों को क्षति पहुंचाते है।

उपयोग :

इसकी लकड़ी में अच्छे एवम् बारीक ग्रेन के कारण इसक उपयोग बहुउद्देशीय है। इसका प्रमुख उपयोग खेल के सामान जैसे हॉकी स्टिक, क्रिकेट का बल्ला, टेनिस व बेडमिन्टन के रेकट आदि में है। इसकी लकड़ी को गरम भाप में मोड़ा जाता है। इसका उपयोग नाव बनाने, मकान बनाने, इमारती व कृषि क्षेत्रों में होता है।
यह एक अच्छा ईधन है। इसकी पत्तियॉ पशुओं वास्ते पौष्टिक एवं स्वादिष्ट चारा है। रेशम का कीड़ा भी इसकी पत्तियों पर पाला जाता है। इसकी टहनियॉ टोकरी बनाने एवं जड़ व छाल का औषधीय उपयोग है। इसका फल स्वादिष्ट होता है जो खाने योग्य है। इसकी लकड़ी से लुग्दी भी बनायी जाती है।

बेर

वनस्पति नाम : **जिजिफस मोरिशियाना**
स्थानीय नाम : **बोर, बोरड़ी**
प्रचलित अंग्रेजी नाम : **डेजर्ड एपल, इण्डियन प्लम, इण्डियन जुजुब**

सामान्य विवरण एवं उपलब्धि :

बेर का वृक्ष मध्यम अथवा छोटे आकार का होता है। इसका तना छोटा व छत्र छतरीनुमा होता है और शाखाएं नीचे को लटकी होती है। इसकी छाल गहरें भूरे अथवा काले रंग की होती है। अन्तः छाल लाल होती है। बेर का वृक्ष समस्त भारत में पाया जाता है। लेकिन शुष्क प्रदेश में वृक्ष समूह में भली भाँति पनपता है। बेर का वृक्ष रेतीली अथवा नदी किनारे की दूमट मिट्टी में, कृषि योग्य भूमि अथवा मामूली सी ऊसर भूमि में भी उगता है।

बेर का वृक्ष 38 से 49 डिग्री सेल्सियस के अधिकतम तापमान, –6 से 13 डिग्री सेल्सियस के न्यूनतम तापमान एवं 130 से 2300 मिलीमीटर की औसत वार्षिक वर्षा की जलवायु में उग सकता है। यह सूखे एवं पाले से प्रभावित नहीं होता। इस वृक्ष को पनपने क लिए प्रकाश एवं खुली जगह की आवश्यकता होती है। बेर के वृक्ष में ठूठ से पुनः फुटान, (कोपिस) द्वारा एवं जड़ों से विकसित जड़ोले (रूट सकर्स) के द्वारा पुनरोत्पादन की क्षमता होती है।

फूल, फल एवं बीज :

बेर के पत्ते शाखाओं पर एकान्तर क्रम से 2 पंक्तियों में उगते है। इसकी पत्ती विभिन्न आकार की 2.5 से 10 से.मी. लम्बी व 1.5 से 6 से.मी. चौड़ी, अर्द्ध गोलाकार व लम्बोदर होती है। इसके किनारे बारीक आरी के दांतों की तरह कटे होते है और नीचे की तरफ 3 नसें होती है। पतझड़ से मार्च–अप्रैल में पत्ते खिर जाते है और इसके तुरन्त बाद नये पत्ते आने लगते है। वर्षा ऋतु के बाद सितम्बर से नवम्बर माह तक फूल आते है और दिसम्बर से फरवरी माह तक फल आने लगते है। जंगल के पेड़ों के फल गोल, हल्के नारंगी अथवा लाल रंग के 1.5 से 2 से. मी. के होते हैक। इसके बीज को एकत्रित कर भण्डार में रखने से अंकुरण क्षमता कम हो जाती है लेकिन 2 1/2 वर्ष तक विद्यमान रहती है।

बीज का उपचार :

बीज को किसी प्रकार के उपचार की जरूरत नहीं होती। बीज को उगाने के लिए निम्न प्रकार की पद्धति अपनाई जाती है। बेर के बीज को 17 प्रतिशत नमक के पानी वाले घोल में डालने पर जो बीज नीचे बैठ जाएं वे बीज उग जाएंगें, जबकि तैरते हुए बीज नहीं उगेगें। नमक के घोल में पैंदे में बैठे बीजों को सावधानीपर्वक तड़काकर (ताकि अन्दर के बीज को नुकसान न होने पाये) बीजारोपण अथवा नर्सरी में पौधे उगाने के काम में लेवें।

पौधशाला तकनीक :

देशी बेर का बीज गोल होता है। एक किलों ग्राम में 1240 से 1760 बीज तक होते है। देशी बेर के बीज को पोलीथीन बेग में फरवरी के महीने में 1.5 – 2.0 से.मी. गहराई पर बोया जाता है। (बीज की मोटाई के बाराबर) इसका अंकुरण 10 से 15 दिन में हो जाता है। सीधे ही क्यारियों में 15 से.मी. की दूर पर लाइनें बनाकर 5 से.मी. के फासले पर बो दिया जाता है और पौधों पर 3–4 पत्ते विकसित होने पर पोलीथीन की थेलियों में प्रतिरोपण कर दिया जाता है। 4 महीने में पौधे 30 से 45 से.मी. ऊँचाई के होकर वृक्षारोपण योग्य हो जाते है।

पौधशाला में चश्मा चढ़ा कर उन्नत किस्मों के पौधे तैयार करना :

मार्च में बीजारोपण द्वारा उगाए पौधों की गोलाई लगभग पेन्सिल के बराबर होने पर उन पर चश्मा चढ़ाया जाता सकता है। पौधों के तने पर 5 से 10 से.मी. ऊँचाई पर 'टी' बडिंग के तरीके से चश्मा चढ़ाना चाहिए। 10–15 दिन के बाद देशी फुटान को हटा देना आवश्यक है। देशी तने को चश्मा चढ़े भाग से लगभग 5 से.मी. ऊपर से काट देना चाहिए।

जुलाई में पौधशाला में बंडिग किये पौधे सूख कर काले पड़ने लग जाते है। अतः इन पर 10–12 रोज के अन्तराल पर 20 ग्राम डाइथिन जेड–78 या एम–45 10 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से बचाव संभव है।

बेर की उन्नत किस्में :

बोरड़ी के पेड़ों पर अथ्वा झाड़ी बेर पर बडिंग कर अथवा चश्मा चढ़ा कर आसानी से उन्नत किस्म के बेरों में बदला जा सकता है। इन पेड़ों में काफी मात्रा में बड़े आकार के स्वादिष्ट फल प्राप्त कर किसान अपनी आयक बढ़ा सकता है। बेर की उन्नत किस्में जो राज्य के विभिन्न जिलों के लिए उपयुक्त पाई गई है उनका विवरण निम्न प्रकार है :–

रेगिस्तानी जिलों में जहां सिंचाई की सुविधा नहीं हो सेव, गोला किस्में उपयुक्त है।

सिंचित क्षेत्रों के लिए मुंड़िया, उमरान बगवाड़ी (जयपुर जिला) किस्में उपयुक्त है।

अलवर, भरतपुर एवं सवाई माधोपुर जिलों के सिंचित व असिंचित क्षेत्रों में अलवरी गोला व राजस्थान के सभी जिलों में चोचल किस्म (निचला सिरा चोंच के आकार का) की पेबन्द चढ़ाई जा सकती है।

देशी बेर के पेड़ों पर चश्मा चढ़ा कर उन्नत किस्म के पेड़ों में बदलना :

इस विधि से बोरड़ी व पाला बेर के पुराने पेड़ों पर चश्मा चढ़ाकर 'टी' बडिंग अथवा रिंग ग्राफ्ट द्वारा उन्नत किस्म में आसानी से बलला जा सकता है। सीधे बीज से पौधे उगाकर उन पर भी 1 या 2 वर्ष बाद चश्मा चढ़ा सकते है। 'टी' बडिंग की विधि निम्नानुसार है।

1. दिसम्बर जनवरी में 5 से 20 वर्ष की उम्र के बोरड़ी (देशी बेर) के पेड़ों का चयन करना चाहिए। मार्च–अप्रैल में चयनित पेड़ों के मुख्य तने को हाथ की आरी से 1.5 से 2 मी. ऊँचाई से काटना चाहिए अथवा पेड़ पर थोड़ी अधिक ऊँचाई पर मुख्य शाखाएं हों तो उनमें से दो–तीन शाखाओं को 30 से.मी. की लम्बाई से काटकर शेष शाखाओं को पूर्णतया हटा देना चाहिए। यदि बडिंग झाड़ी बेर पर करना है, तो मुख्य तने को धरती की सतह पर काटें। कटाई के तुरन्त पश्चात् कटे हुए भाग पर कोलतार का लेप करना उचित होगा।
2. 15 अप्रैल तक जिस उन्नत किस्म का चश्मा चढ़ाना हो उन पेड़ों की छंगाई करनी चाहिए। जिससे समय पर आवश्यकतानुसार स्वस्थ उभरी आँखें (बंड्स) प्राप्त हो सकें।
3. देशी बेर की केवल 3 या 4 फुटान जो आपस में बराबर की दूरी पर हो व पेन्सिल की गोलाई की हो उन्हें छोड़कर दूसरी समस्त फुटान को हटा देना चाहिए।
4. चश्मा चढ़ाने का सर्वोत्तम तरीका 'टी' आकार का है। इसमें देशी शाखा की गोलाई के आधे हिस्से पर धारदार चाकू की सहायता से चीरा लगावें। इसके उपरांत टहनी की लम्बाई में पूर्व में लगे हुए चीरे के बीच से 1 से 1.5 से.मी. लम्बा चीरा लगावे जिससे अंग्रेजी का 'टी' आकार बन जावें।
5. उन्नत किस्म के पेड़ों से उसी गोलाई की स्वस्थ उभरी हुई (बड्स) आंख, नई फुटान की शाखा से प्राप्त करें। आंख की छाल के साथ कुछ लकड़ी का हिस्सा भी चिराई के साथ आए, जिससे आंख के आस–पास छाल का हिस्सा क्षतिग्रस्त नहीं हों। आंख की चाकू की सहायता से शाखा से अलग करें। आंख के साथ जो लकड़ी का हिस्सा हो उसके सावधानीपूर्वक चाकू की सहायता से अलग करें।
6. देशी बेर पर जहां 'टी' के आकार का चीरा लगा हो उसे चाकू की सहायता से छील कर इस तरह खोलें जिससे आंख, तने व छाल के बीच में अच्छी तरह फिट हो जावें। आंख को अच्छी तरह से लगाने के उपरान्त प्लास्टिक की चपटी पट्टी की सहायता से आंख का बचाते हुए उसके ऊपर व नीचे के हिस्से को कसकर बांध दें जिससे आंख व तने के बीच जगह नहीं रहें।
7. आंख यदि दूर से लानी हो तो उभरी हुई आंख वाली टहनियों को पेड़ों से 40 से 50 से.मी. लम्बाई में काटें, जिसमें 3 से 4 स्वस्थ आंखें होती है एवं भीगी हुई टाट में लपेटकर प्लास्टिक की थैली में डालकर गंतव्य स्थान पर ले जावें। परन्तु उक्त आंखों को 12 घण्टे में उपयोग में ले लेवें।

8. चश्मा चढ़ाने के 10 – 15 दिनों के पश्चात आंख में फुटान चालू हो जाती है। आंख के निचले व ऊपर वाले देशी तने से जो भी फुटान चालू हो उसको समय–समय पर हटाते रहना आवश्यक है। चश्मा चढ़ी हुई आंख से जब फुटान लगभग 5 से.मी. हो जावे तब देशी शाखा को 4 से 5 से.मी. ऊँचाई से काट दें।

पौधारोपण विधि :–

जुलाई में अच्छी वर्षा होने पर अथवा फरवरी–मार्च में सिचाई की सुविधा उपलब्ध होने पर, बेर के पौधे लगाने का उपयुक्त समय है। पौधे 4X4 मी. अथवा 6X6 मी. या 8X8 मी. पर लगाये जा सकते है। पौधे लगाने से पूर्व खुदी हुई मिट्टी को 100 ग्राम बी.एच.सी. या 5 एम.एल. एल्ड्रिन 30 प्रतिशत ई.सी. से उपचार करना आवश्यक है। वर्षा ऋतु को छोड़कर पांच से 6 बार पानी देना अच्छा रहता है। पौधों में जुलाई से अक्टूबर के मध्य तक 3–4 बार निराई गुड़ाई करना और पानी देने के 1–2 दिन बाद गुड़ाई करना पौधे की बढ़ोतरी के लिए अच्छा रहता है।

वृद्धि दर :

बेर का पौधा नियमित रूप से निराई गुड़ाई करने पर तेजी से बढ़ता है और एक वर्ष में 75 से.मी. व 2 वर्ष में 1.25 मी. की ऊँचाई तक बढ़ जाता है। सामान्य अनुकूल पशरिस्थितियों में 5 वर्ष में 2.15 मी. व 7 वर्ष में 2.50 मी. की ऊँचाई हो जाती है। पौधों की गोलाई में औसत वृद्धि 2.5 से 4.0 से.मी. प्रति वर्ष होती है।

हानिकारक कीड़ों से बचाव :

1. **फल मक्खी कीट :–** फरवरी–मार्च से फल मक्खी कीट का प्रकोप शुरू हो जाता है। इससे बचाव हेतु डायमिथोएट 30 ई.सी. 2 मि.लि. या एण्डोसल्फान 35 ई.सी. 2 मि.लि. या मैलाथियान 50 ई.सी. 1.5 मि.लि. को एक लिटर पानी में मिलाकर जरूरत के अनुसार घोल बनाकर 15 दिन के अन्तराल पर पेड़ों पर छिड़काव करें।
2. **सफेद लट :–** शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में जुलाई–अगस्त में सफेद लट के कीट का भारी प्रकोप होता है। यह बेर की नई कोपलों को नुकसान पहुंचाता है। इसके प्रकोप से रोकथाम के लिए सेविन या सेवीमोल 50 प्रतिशत वेटेबल और 0.5 मिली. ली. डाइमेक्रोन 98 प्रतिशत का एक लीटर पानी में घोल बनाकर वर्षा विहीन दिवस पर प्रातः या दोपहर बाद छिड़कने से पेड़ों का बचाव हो सकता है।

उपयोग :

बेर खाने के काम में आता है। आयुर्वेद के मतानुसार बेर मधुर, स्निग्ध, वापपित्त को जीतने वाला तथा बवासीर अतिसार एवं स्वरदोष जैसे रोगों में औषधि के रूप में उपयोग में आता है। बेर में प्रोटीन, क्षार, फास्फोरस, कैल्शियन, केरोटिन तथा विटामिन 'सी' तथा लौह तत्व होते है। बेर की कांटेदार डालियां बाड़ बनाने के उपयोग में ली जाती है। बेर के पेड़ पर लाख तथा रेशम के कीड़े पाल कर लाख तथा रेशम प्राप्त किया जा सकता है। बेर के पत्ते भेड़–बकरियों एंव ऊँट के चारे के रूप में उपयोग किए जाते है। लकड़ी जलवान के काम आती है। प्रत्येक वर्ष बेर के वृक्ष को छंगाने से अधिक मात्रा में जलावन प्राप्त होता है। इसके उपयोगी औजार तथा खूँटे बनते है।

पेमदी बेर से 5वें वर्ष में 6X6 मी. की दूरी पर रोपित पेड़ों से 30 से 40 कि.ग्रा. फल प्रति वृक्ष प्राप्त होने लगते है। बेर के बगीचे से 22500 रूपये प्रति हैक्टेयर की वार्षिक आय हो सकती है।

बाँस एक उपयोगी पौधा

वनस्पति नाम : डेन्ड्रोकेलेमस स्ट्रिक्टस

विवरण :

गिरधर की कुण्डली 'लाठी में गुण बहुत है', सदा राखिये संग'—प्राचीन समय से सुनते आ रहे है। यह लाठी जो विभिन्न तरीकों से हमारी रक्षा करती है, बांस की ही होती है। बांस एक उपयोगी पौधा है। इसका उपयोग इमारती कार्य छप्परबन्दी, टोकरी, बाड़, चटाई और औजारों के दस्ते आदि बनाने में किया जाता है।

उपलब्धि :

बांस की अनेक प्रजातियां है। लेकिन एक प्रकार से ठोस बांस, जिसे वनस्पति शास्त्र की भाषा में डेन्ड्रोकेलेमस स्ट्रिक्टस कहते है, मुख्य प्रजाति है। बांस वैसे तो भारत के प्रत्येक भाग में पैदा होते है। मुख्यतः पूर्वाचल सहित उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश एवं राजस्थान में इसका अधिक उत्पादन होता है। बांस के पौधे झुण्ड (क्लम्प) में उगते है। वनों में बांस सामुहिक रूप से पाया जाता है।

जलवायु :

बंजर भूमि में भी जहां पर्याप्त वर्षा होती है, बांस आसानी से पैदा हो सकता है। सामान्यतः 750 मि.मी. की वार्षिक वर्षा इसके लिए पर्याप्त मानी जाती है। अधिक वर्षा से इसे नुकसान नहीं होता, बल्कि अधिक बढ़ता है। वर्षा के जल के बहाव वाले स्थान, जहां पर नमी अधिक उपलब्ध होती है, बांस के लिए अधिक उपयुक्त है। राजस्थान में अरावली के ढ़लानों, विशेषकर दक्षिण—पश्चिमी छोर की पहाड़ियां, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, चित्तौड़गढ़ और उदयपुर जिले इसक लिए उपयुक्त क्षेत्र है। कोटा एवं झालावाड़ के वनों एवं खेत पर बांस का मेड़ पर बांस का वृक्षारोपण किया जा सकता है।

फूल फल व बीज :

बांस में नये पत्ते वर्षा ऋतु में आते है मार्च से जून के महिनों में पत्ते गिर जाते है। इसके वनों में बहुत कम मिड़ों में माह नवम्बर से अप्रैल में फूल आते है। इसका बीज जौ के आकार का होता है व मई—जून के महीनों में पकता है। एक किलोग्राम में लगभग 25000 बीज होते है।

पौधशाला तकनीक :

पौधशाला में बांस के पौधे क्यारियों में उगाकर 28X12 से.मी. की थैलियों में पौधें लगाना ठीक रहता है। बांस के पौधे क्यारियों में 15X15 से.मी. की दूरी पर उगाकर नौ माह से बारह महीने तक इसकी राइजोम के ठीक से विकसित होने के बाद ऊपरी हिस्सा काट कर राइजोम थैलियों में लेने पर बड़े पौधे तैयार किये जाते है।

पौधारोपण विधि :

किसान बांस को खेत के एक हिस्से, खेत की मेड़, कुएं के समीप और सिंचाई के धोरें के किनारे जहां पर भी नम भूमि उपलब्ध हो, सफलतापूर्वक लगा सकते है। इसके अतिरिक्त सड़कों तथा रेल मार्ग के किनारे पर भी बांस लगाने से भारी वर्षा या पानी के तेज बहाव से भू—क्षरण को रोकने में सहायता मिलती है।

बांस के पौधों को कतारों में अन्य वृक्ष प्रजातियों के साथ एकान्तर क्रम से लगाना उपयुक्त होता है। बांस झुण्ड में पैदा होता है, और इसके विकास के लिए स्थान चाहिए। इसलिए बांस लगाने के लिए दो कतारों की दूरी 6 मीटर (लगभग बील फुट) रखना चाहिए। प्रत्येक कतार में पांच मीटर की दूरी पर 45X45X45 से.मी. के गड्ढें मार्च—अप्रैल में खोद लिए जावें। इस प्रकार एक हैक्टर भूमि में बांस के करीब 333 पौधे लगाये जा सकते है। गड्ढ़े

में से निकली हुई मिट्टी से कंकर–पत्थर निकाल कर सड़ा हुआ गोबर का खाद तथा दो चम्मच एल्ड्रेक्स पाउडर मिला देना चाहिए।

बांस का पौधा लगाने के लिए वर्षा ऋतु में बादलों से घिरा हुआ दिन सबसे अच्छा रहता है जब मिट्टी में पर्याप्त नमी उपलब्ध हो। पौधशाला से पौध सही प्रकार से टोकरी अथवा तगारी में लाने चाहिए। पौधशाला से पौध लाने के पश्चात् शीघ्रातिशीघ्र उन्हें रोपित कर देना चाहिए।

पौधे की पोलीथीन की थैली को तेज पत्ती (ब्लेड) से इतनी सावधानी से काटना चाहिए कि थैली तो मिट्टी से अलग हो जाये, परन्तु मिट्टी का पिण्ड न टूटे अन्यथा पौधे की जड़ों को नुकसान हो जाता है।

पौधे को खड्डे में ठीक से सीधा रखकर खोदी गई, मिट्टी को खड्डे में चारों ओर भर कर खूद दबा दें। वर्षा ऋतु में तथा उसके पश्चात् पौधें के आस–पास खरपतवार की सफाई के लिए एक–एक माह क अन्तराल में चार पांच बार निराई करें। नमी के संरक्षण के लिए साथ–साथ ही गुड़ाई भी की जानी चाहिए।

बांस के पौधे वन विभाग की पौधशालाओं से प्राप्त किए जा सकते है। इसके लिए अपनी आवश्यकता नजदीक की पौधशाला के प्रभारी को अप्रैल–मई में बता देनी चाहिए। किसान स्वयं भी, अपने खेत पर वन विभाग से सहयोग एवं सलाह प्राप्त कर निजी पौधशाला में पौधे तैयार कर सकता है।

उत्पादन से लाभ एवं वृद्धि दर :

बांसवाड़ा, चित्तौड़गढ़, डूंगरपुर एवं उदयपुर आदि जिलों में जहां प्राकृतिक रूप से बांस काफी मात्रा में पाया जाता है वहां राइजोम (गांठदार जड़) से वर्षा ऋतु मं आसानी से लगाया जा सकता है। इस विधि से पौधा जल्दी पनपता है।

बांस लगभग 6 मीटर अथवा 20 फुट ऊंचाई एवं (तीन इंच) 7.5 से.मी. व्याास तक 7 से 8 वर्षो में विकसित होता है। वर्षा ऋतु में पांच से तीन से.मी. तक प्रतिदिन बढ़ता है।

बांस का पहला उत्पादन पौध लगाने के सात वर्ष बाद मिलता है। इसके पश्चात् प्रति चार वर्ष में एक बार बांस का उत्पादन मिलता रहता है। ज्यों–ज्यों पौधों की आयु बढ़ती जायेगी त्यों–त्यों नई फुटान से ऊगने वाले बांस पहले की अपेक्षा ज्यादा मात्रा में ऊंचे और मोटे मिलेंगे। इनकी आयु तब समाप्त होती है, जब इन पर फूल व बीज उग जाते है, जो सामान्यतः जमीन एवं जलवायु और परिस्थिति के अनुसार चालीस से साठ वर्ष की होती है। वनों में बांस में फूल व बीज सामूहिक (ग्रिगेरियस) रूप से आता है।

एक हैक्टेयर बांसों की खेती पर लगभग चार हजार रूपया व्यय होता है। एक बार पौधा जम जाने के बाद देखभाल के सिवा अन्य व्यय नहीं के बराबर ही होता है।

सात से आठ वर्ष पश्चात् सामान्य परिस्थितियों में प्रत्येक बांस के झुण्ड में से न्यूनतम लगभग 5–6 परिपक्व बांस निकाले जा सकते है। अर्थात् सात वर्ष पश्चात् प्रति हैक्टेयर से करीब 1500 से 1800 बांस प्रति चार वर्ष में एक बार मिलते रहेंगे। यदि एक 15 फुट बांस का औरत मुल्य 6 रूपया ही माना जाय, तो आठवें वर्ष से प्रति चार वर्ष में लगभग 10000 से 12000 रूपयें की आय होगी। पौधों की आयु बढ़ने के साथ–साथ प्रत्येक झुण्ड से ज्यादा अच्छे बांस अधिक तादाद में मिलेंगे ओर उनके दाम भी ज्यादा अच्छे मिलते रहेंगे। इस प्रकार एक बार की मेहनत एवं व्यय से करीब चालीस वर्ष तक यह आमदनी निरन्तर चालू रह सकेगी।

प्रबन्ध एवं विदोहन तकनीक :

बांस को काटने के लिए तेज धार वाला औजार काम में लेना चहिये। जिससे बांस फटे नहीं। काटे जाने वाले बांस को नीचे पहली एवं दूसरी गांठ के मध्य से काटना चाहियें। जिससे एक गांठ एवं उसके ऊपर का हिस्सा

(मिडे) में रहें। जिस मिडे में चार या इससे कम कल्ले हो उसमें से बांस नहीं काटना चाहिये। इसका अर्थ यह है कि एक मिडे में 2 वर्ष से अधिक के बांस काटने के पश्चात् कम से कम चार–पांच पुराने बांस छोड़ दिये जाने चाहिये। नये कल्ले कदापि नहीं काटे जाने चाहिये। इन पर जमा मोम स्पर्श करने पर अंगुलियों पर लग जाता है और इनकी गांठ पर एक विभिन्न प्रकार की पत्ती (शीर्ष) विद्यमान रहती है।

उपयोग :

बांस का उपयोग प्राचीन काल से मकान के लिए छप्पर बनाने, दीवार, दरवाजे बनाने में किया जाता है। इसके अलावा घरेलू उपयोग की कई चीजें जैसे चारपाई, सिड्डी, टोकरे, सूपड़े, चटाई, झाड़ू, कुल्हाड़ी एवं हथोड़ा जैसे हथियारों के हत्थे के रूप में भी बांस का उपयोग खुब किया जाता है। शोकिन लोगों के लिए बजन के हल्केपन के कारण मेज, कुर्सियों आदि भी बांस की बनने लगी है इसके अतिरिक्त बांस का मुख्य उपयोग अच्छी श्रेणी का काजग बनाने मे आता है। उत्तम श्रेणी का कागज बनाने के लिये तैयार की गई लुग्दी (पल्प) मे कम से कम 70 प्रतिशत लुग्दी बांस से बनी हुई होती है।

विभिन्न प्रकार की रेयन उत्पादन में भी बांस की लुग्दी का उपयोग होता है।

कागज एवं रेयन उत्पादन की निरन्तर बढ़ती हुई मांग तथा जंगलों के निरन्तर ह्रास से बांस का उत्पादन कृषकों के लिए बहुत लाभदायक होगा। बांस उत्पादकों को इसका लाभ उठाना चाहिए।

कुमठा

वैज्ञानिक नाम : अकेशिया सेनेगल
स्थानीय नाम : कुमठा
अंग्रेजी नाम : गम अरेबिक ट्री

सामान्य विवरण :

इसका उद्गम स्थल भारत का शुष्क व उष्ण क्षेत्र एवं अफ्रीका में सूडान तथा सुमालिया है। यह विशेषकर गुजरात के कच्छ क्षेत्र राजस्थान के वन क्षेत्र, दक्षिण पूर्वी पंजाब में पाया जाता है। यह अरावली पर्वत श्रृंखला के पश्चिम में शुष्क एवं रेतीले ढ़लान पर बहुतायात से मिलता है। कुमठा 11 से 18 डिग्री उत्तरांश में मिलता है। यह मध्यम आकार का कांटेदार वृक्ष है। इसकी दाल हरी होती है और झिल्ली नुमा पीली परत में सूखकर उतरती है। इसके लिए वार्षिक औसत वर्षा 200 से 500 मि.मी पर्याप्त है। वैसे यह न्यून्तम 100 मि.मी. वार्षिक वर्षा में भी पनप सकता है। इसमें 6 से 8 माह तक सूखा सहन करने की क्षमता होती है। कुमठा के प्राकृतिक वनों में औसत तापमान 22 से 32 डिग्री रहता है। पानी से संतृप्त क्षत्रों में इस प्रजाति के वृक्ष नहीं पनपते।

यह राजस्थान के मरूस्थलीय एवं अर्द्धमरूस्थलीय क्षत्रों में पाली, अजमेर, नागौर, सीकर, जयपुर व अलवर जिलों में प्राकृतिक वनों में पाया जाता है।

बीज की उपलब्धि :

इसमें फूल अगस्त से सितम्बर तक आते है जिसमें सबसे ज्यादा पकती है। दिसम्बर से मार्च माह के बीज इसकी फली व बीज बिखर जाते है। इसके बीज प्राप्त करने के लिए, इसकी पकी हुई फलीयों को इकट्ठा कर कूट कर साफ किया जाता है।

इसके एक कि.ग्रा. में करीब 8200 से 10900 तक बीज होते है।

पुनरोत्पादन विधि :

प्राकृतिक तौर पर इसका बीज अच्छी मात्रा में अपने आप उग जाता है। अग्रिम मृदा कार्य कर डोले के ओर में एकत्रित नरम मिट्टी में बीजारोपण द्वारा अंकुरित पौधो से अच्छे परिणाम आते है। जून माह में इसकी बीजाई खाई फैंसिंग के डोले अथवा ट्रेंचों के डालो पर की जाती है। अंकुरित पौधो के बढ़ौतरी अच्छी होती है। थैलियों अथवा मिट्बि व खाद की ईंटों में (Planting Bricks) तैयार किये गये पौधो से वृक्षारोपण भी अच्छे परिणाम निकलते है।

पौधशाला विधि :

इसके बीज को पूर्व उपचार की आवश्यकता होती है। बीज को 24 से 48 घन्टे पानी में भिगोने से इसका उपचार हो जाता है। इसमें अंकुरण क्षमता 56 प्रतिशत है। इसका अंकुरण 2 से 6 दिन के मध्य पूर्ण हो जाता है।

पूर्व उपचार के पश्चात इसकी 12.5 गुणा 30 से.मी. मिट्टी खाद मिश्रण से भरी थैली में फरवरी माह में बीजाई कर दी जाती है। जिसको नियमित रूप से पानी, निराई गुडाई तथा समय–समय पर खाद व आवश्यकता पड़ने पर कीटनाशक दवा के उपयोग से, पौधे की मानसून तक, वृक्षारोपण योग्य ऊँचाई हो जाती है। पौधों को आवश्यकता से अधिक नमी सहन नहीं होती।

क्षेत्र में वृक्षारोपण के दौरान अत्यन्त सावधानी से थैली को काटकर जड़ों की मिट्टी को यथावत रखते हुए पौधे का प्रत्यारोपण कर दिया जाता है। ताकि अनावश्यक रूप से इसक झटका नहीं लगे।

वृक्षारोपण से पूर्व परिवहन भी सावधानी से करवाया जाना चाहिये तथा परिवहन से पूर्व पौधे को नर्सरी बेड़ में अच्छी तरह बदली करके अनावश्यक रूप से बढ़ी जड़ों की छंटाई की जानी अवाश्यक है।

सार सम्भाल :

प्रथम वर्ष में दो बार निराई गुड़ाई अति आवश्यक है। द्वितीय वर्ष में भी वर्षा ऋतु के मध्य में व बाद में 2 बार निराई गुड़ाई की जावे।

वृद्धि दर :

इसके बढ़ने की क्षमता धीमी है। करीब तीन साल में यह 1.5 से 1.8 मीटर तक ऊँचाई प्राप्त करता है।

हानिकारक रोग व कीड़ो का प्रकोप :

प्रारम्भिक अवस्था में पौधो को पाले, तथा सूखे से नुकसान अक्सर ज्यादा होता है। बकरी व ऊँट चराई के द्वारा नुकसान पहुंचाते है। चरवाहे भी इसे काफी हद तक क्षमि पहुंचाते है। पॉलिपोरस हिस्पिडस नामक फंगस इसके तने को क्षमि पहुंचाती है।

सामान्य विवरण :

यह एक अधिक प्रकाश चाहने वाला वृक्ष है। प्रारम्भिक अवस्था में इसे पाले से नुकसान होता है। परन्तु बड़ा होने पर पाले तथा सूखे से बहूत कम प्रभावित होता है। इसमें कौपिस की अच्छी क्षमता होती है।

उपयोग :

इसकी लकड़ी मजबूत तथा लम्बे समय तक उपयोग मे आने बवाली होती है। इसकी लकड़ी का उपयोग गाड़ी के पहिये बनाने, खंभे कौपिस– वृक्ष के ठूंठ में फुबन द्वारा विकसीत पौधे। तथा कृषि उपकरणों में किया जाता है।

इससें 'गम अरेबिक' प्राप्त होता है। इसकी फलियां तथा पत्तियां पशुओं के चारे के रूप में काम ली जाती है।

इसकी लकड़ी का उपयोग ईंधन के रूप में भी किया जाता है तथा खेत की मेंड़ पर बिजाई से वनस्पति बाड़ के रूप में विकसित हो जाता है।

खेजड़ी

वनस्पतिक नाम : प्रोसोपिस सिनेरेरिया
(प्रो0 स्पाइसिजरा)
स्थानीय नाम : खेजड़ी

विवरण एवं उपलब्धि :

खेजड़ी का वृक्ष राजस्थान का राजकीय वृक्ष है। यह भारतवर्ष में गुजरात, राजस्थान, हरियाणा एवं पंजाब के शुष्क उत्तर–पश्चिमी मैदानी भाग एवं रेतीली मिट्‌टी में प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाला पर्ण–पाती वृक्ष है, लेकिन अधिकांश समय हरा–भरा रहता है। इसकी छाल हल्के स्लेटी व भूरे रंग की होती है और इस पर धारियां होती है। इसकी नरम डालियों पर तिकोने (कोनिकल) काटें होते है। खेजडी के वृक्ष की अधिकतम ऊँचाई 12मी. व गोलाई 120से.मी. होती है।

जलवायु :

खेजड़ी का पौधा 50डिग्री से. के अधिकतम तापमान व 4 से 6 डिग्री से. का न्यूनतम तापमान सहन कर सकता है। इसके छोटे पौधे पाले के प्रति संवेदनशील है लेकिन बड़े पौधो और वृक्षों पर पाले का असर नहीं होता है। इसके लिए 100 मिली.मी. से 800 मिली.मी. वार्षिक औसत वर्षा पर्याप्त है। इसके पौधे 8 माह से 11 माह तक सूखा सहन कर सकते है।

खेजड़ी के वृक्ष आम–तौर पर रेतीली एवं दूमट मिट्‌टी के क्षेत्रों में पाये जाते है। यह हल्की ऊसर भूमि में भी पनप सकता है, लेकिन जल निकासी (Drainage) ठीक से होना आवश्यक है। इसकी जड़ें जमीन में बहुत गहरी जाती है, इस वृक्ष की जड़ें 21 मीटर व 36 मीटर गहरी नापी गई है। इसकी जड़ों से भी रूट सकर के द्वारा पौधे विकसित हो सकते है। खेजड़ी के वृक्ष को पनपने के लिए प्रकाश आवश्यक है।

फुल–फल एवं बीज :–

खेजड़ी के वृक्ष के पत्ते सर्दी के मौसम के अन्त में आंशिक रूप से झड़ जाते है। मार्च से मई के महिनों में खेजड़ी के वृक्षों पर नये पत्तों के साथ पीले फूल आते है। इसकी फलियां जून से अगस्त के महिनों के मध्य में पक जाती है। इसकी फली 10 से 20 से.मी. लम्बी व 5 से 10 मिली मीटर चौड़ी होती है। इसकी बीज 0.5से.मी. से 0.7से.मी. x 0.4से.मी. से 0.5से.मी. होता है। एक किग्रा. में लगभग 25,000 बीज होते है।

पौधशाला तकनिक :

खेजड़ी के बीजों की अंकुरण क्षमता 65 प्रतिशत तक होती है। बीजों का अनेक वर्षो तक संग्रह किया जाता है। इसके बीजों को 24घंटे पानी में भिगोकर रखने के बाद बोने से अंकुरण जल्दी होता है। इसके बीजों को सीधे ही 30 से.मी. x 12से.मी. की

....

रूटसर – जड़ों से फूटान द्वारा विकसित पौधे।

थैलियों में बोना ठीक रहता है। इसकी जड़ तीन महीने में ही काफी बढ़ जाती है। इसलिए थैलियों को पलटते रहना चाहिए। खेजड़ी के पौधे बहुत धीमी गति से बढ़ते है इसलिए एक वर्ष में अधिकतम 30से.मी. की ऊँचाई तक बढ़ पाता है। इसलिए खेजड़ी के पौधे लगभग दो वर्ष में 45 से.मी. से 60 से.मी. ऊँचाई तक बढ़ने के बाद वृक्षारोपण स्थल पर प्रतिरोपित किये जाने उचित है।

वृक्षारोपण की विधि :

खेजड़ी के पौधे वर्षा ़तु आरम्भ होने पर पहले से तैयार किये गये खड्डों में खाद व एल्ड्रेक्स मिलाकर प्रतिरोपित किये जा सकते है। इनको 3मी. x 3मी. की दूरी पर लगाना उचित होगा। पौधे के बड़े होने और छत्र (क्राउन) का फैलाव बढ़ने के साथ पौधो की संख्या कम की जा सकती है और पौधे 6 x 3मी. की दूरी पर रखें जा सकते है।

वृद्धि दर :

इसके पौधो की वृद्धि प्रथम 2 वर्षो में बहुत धीमी होती है। लेकिन तीसरे वर्ष से 50 से 60 वर्ष की आयु तक खेजड़ी के वृक्ष मध्यम गति से बढ़ते है। 15 वर्ष में 6 से.मी. व्यास एवं 6 मीटर ऊँचाई, 25 वर्ष में 11 से.मी. व्यास एवं 7.7 मीटर ऊँचाई, 35 वर्ष में 15 से.मी. व्यास एवं 9.3 मीटर ऊँचाई व 45 वर्ष में 20 से.मी. व्यास एवं 10.8 मीटर ऊँचाई तक बढ़ते है।

कापिस द्वारा पुनरोत्पादन :

कोपिस अर्थात ढूढों से विकसित कल्लों से अथवा रूट सकर्स से विकसित पौधों की वुद्धि बीजारोपण से उगे पौधो की अपेक्षा अधिक होती है।

हानिकारक कीड़ों का प्रकोप व अन्य रोगों से नुकसान :

खेजड़ी के बीज से अंकुरित पौधे पाले के प्रति संवेदनशील होते है। पौधे में बार–बार पाले के कारण सूख कर पुनः जड़ से फूटान होता है और पौधा झाडीनुमा बन जाता है। चूहे इसकी जड़ खा जाते है। बबूल के तने में छिद्र करने वाले कीड़े (Celosterna Scabrator) इसे भी नुकसान पंहुचाते है। इसकी शाखाओं पर लाख के कीड़े भी पलते है। इस पर रेवनेला स्पाइसीजेरा प्रजाति का फंगस देखा गया है।

उपयोग :

खेजड़ी का वृक्ष राजस्थान के मरूस्थल वासियों के लिए कल्पवृक्ष के समान वरदान है। सन् 1868–69 के अकाल में अन्न के अभाव में मनुष्य इसकी छाल खाकर जीवित रहे। इसकी इमारती लकड़ी, ईंधन, चारे व खाद्य पदार्थ के रूप में काम में लिया जाता है।

....

कोपिस – वृक्ष के ठूंठ से फूटान द्वारा विकसित पौधे।

इसकी फली को राजस्थान में सेंगरी के नाम से जाना जाता है और इसकी सब्जी बनाते है। पांच वृक्षों के फलों की मिश्रित सब्जी में भी इसका प्रयोग किया जाता है। (गूंदा, कुमठा का बीज, सेंगरी व खींप की फली)।

इसकी फली व पत्तों को पोष्टिक आहार के रूप में वृक्षों को छांगकर पशुओं को चराते है। इसके पत्तों को खाद (ग्रीन मेन्योर) के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है। इसके पत्तों में नाइट्रोजन 2.9 प्रतिशत पी2ओ5 0.4 प्रतिशत व पोटेशियम 1.4 प्रतिशत होता है।

इसकी लकड़ी भारी, मजबूत व टिकाऊ होती है। इसको कृषि–उपकरण, बैलगाड़ी का जूडा आदि एवं भवन निर्माण में उपयोग में लेते है।